श्रीः ।

योगसन्ध्या ।

(साधन करनेवालोंको अमृतकी लता)

वेदशास्त्रसंपन्न धर्ममूर्त्ति श्रीयुत जगन्नाथ चैतन्य ब्रह्मचारीजीके चरणारविन्दानुरागी अष्टांग-योगमें कुशल श्रीसदाशिव नारायण ब्रह्मचारी निर्मित.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" **लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर** " स्टीम्-प्रेस.

कल्याण-बंबई.

संवत् १९९०, शके १८५५.

मुद्रक और प्रकाशक-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

भूमिका।



मोहमय यह अपार संसार सागर अनादि और अनन्त है, जिसके पार होनेके वास्ते ऋषिलोगोंने चिरकाल पर्यंत घोर तपश्चर्या की है। वही मार्ग हम लोगोंको भी श्रेयस्कर है, इससे लोगोंको उचित है कि, इस भवसागरसे पार होनेका उपाय तप, जप, दान तीर्थ आदि करें।

तप आदिकके करनेसे इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख होताहै। इस लोकमें तो लोगोंमें प्रतिष्ठा मान मर्यादा, शरीरमें आरोग्यता, यशकी वृद्धि और कान्ति होती है। एकको देखकर दूसरेको भी श्रद्धा होती है, यह भी एक उत्तम परमार्थ जीवोंके कल्याणार्थ है और अन्तमें कर्माऽनुसार स्वर्गलोककी प्राप्ति या मोक्ष होता है। यह सब धर्म गृहस्थके ही वास्ते हैं, कारण कि जब गृहस्थाश्रमका धर्म शुद्ध रहेगा अर्थात् स्वधर्मरूपी तप, प्रणव, गायत्री या गुरूपदेशसे प्राप्त हुए मन्त्रका जप, पर्वकाल आदिपर वित्तानुसार सत्पात्रोंको दान और प्रयाग, काशी, गया आदि तीर्थोंकी यात्रा अथवा किसीका अनिष्ट न देखना, जैसा " तीर्थं परं किञ्च मनो विशुद्धम् " इस प्रकारके गृहस्थसे जो सन्तान उत्पन्न हो यदि ब्रह्मचर्यादि व्रतको धारण करेगा तो विना परिश्रम ही धर्मके प्रभावसे चिरकालपर्यन्त सुखसे रहकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होगा। जब गृहस्थाश्रम शुद्ध न हो तो सन्तान शुद्ध कहांसे होगा कि, जिससे धर्माचरणकी वृद्धि हो, इस लिये गृहस्थको चाहिये कि स्वधर्मका प्रतिपालन करे। इसीसे कहा है कि " धन्यो गृहस्थाश्रमः "

इस **योगसन्ध्या** नामक ग्रंथमें तीन प्रकरण हैं।

प्रथममें--प्रणवप्रतिपादन अर्थात् प्रणव क्या वस्तु है ? किस तरह जानाजाताहै ? जाननेसे क्या लाभ है ? और अंतमें उसके उच्चारण होनेसे मुक्ति होतीहै। सगुण उपासनासे निर्गुणका बोध, प्रतिमा आदि क्रमसे मूर्ति सम्पादन और ध्यानादिका क्रम व चित्तशांत्यर्थ उपाय आदि विषय वर्णित हैं।

दूसरेमें--योगाभ्यास अर्थात् अष्टाङ्गयोग--यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७ और ८ समाधिका वर्णन है।

इसका विवरण थोडेमें सारांशमात्र कहागया है । योगमें मुख्य प्राणायाम है, जहां तक प्राणायाम शुद्ध नहीं होता तहां तक उस पुरुषके चित्तकी चंचलता दूर नहीं होती । इसीसे सब कर्मोंमें " आचम्य प्राणानायम्य " कहा है, और सन्ध्याके पूर्व ही प्राणायाम कहके अनंतर आचमनादि कृत्य कहे हैं । अभिप्राय यह है कि प्राणायाम ही मुख्यकरके जन्मजन्मान्तरोंके कल्मषोंका नाशक और चित्तशुद्धिकारक है ।

योगाभ्यास करनेसे मनुष्य बहुत दिनोंतक सुखपूर्वक जी सकता है, शरीर शिथिल नहीं होताहै, बाल नहीं पकते और त्वचादिकोंका सिकुडना नहीं होता " वलीपलितवेपघ्नः " ।

तीसरे प्रकरणमें—सन्ध्या है, जो सन्ध्या इस देशमें आचाराऽऽदर्शाऽनुसार प्रचलित है, उसको उल्लंघन न करके उसमें जिन २ विषयोंकी जिस २ जगहमें योजना करनेकी आवश्यकता थी उसकी योजना प्रमाण सहित मैंने करदी है, अवलोकन करनेसे ज्ञात होगा ।

परिश्रमसे प्राप्त हुई इस विद्याको सज्जनोंके दृष्टिगोचर करताहूं, आशा है कि यह सज्जनोंके चित्तका विनोद करनेवाली होगी ।

मैंने इस आवृत्तिमें पहिलेसे और भी विषय पुष्ट करदिया है ।

इस ग्रन्थमें जहां कहीं दृष्टिदोषसे अथवा प्रेसके दोषसे अक्षर, मात्रा, शब्दादिकी त्रुटि होगई हो उसको सज्जन लोग कृपा कर सुधारलेंगे ।

अयि गीर्वाणवाग्विदः !

परब्रह्मात्मकोऽयमोङ्कारोऽक्षरो लोकोभयानन्ददायकः सकलशास्त्रोत्पत्तिकारणभूतश्चातो विद्वद्भिरवश्यमाराधनीयः । यद्यपि परमात्मप्रापकमार्गाश्शास्त्रे बहवस्सन्ति तथाप्योङ्काराराधनं सर्वोत्कृष्टमेव । उक्तञ्च ब्रह्मसूत्रे—"ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानमिति" । सकल शास्त्रान्यतमाभ्यासजनितजनानुरागानुमोदनाद्यैहिकानेकसुखम् अनुभवतामेतदाराधनतो महत्पदवीं प्राप्नुवतां भवतामाचरणेनेतरोऽपि जनस्तदनुरागी भविष्यतीति ।

योगाभिलाषी—

श्रीसदाशिव नारायण चै० ब्रह्मचारी,

बलुआघाट,

प्रयागराज.



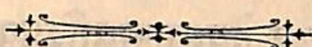
अथ योगसन्ध्याकी अनुक्रमणिका।

इति विषयानुक्रमणिका ।

॥ ॐ ॥

योगसन्ध्या ।

भाषाटीकासहिता ।



श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय शिवाय गुरवे नमः ।

प्रणवज्ञानप्रकरण १.

मंगलाचरणम् ।

जगद्व्याप्ताय शान्ताय शिवायोङ्काररूपिणे ।
नमो विधाय लोकेभ्यो योगसन्ध्यां समारभे ॥

जो ओंकाररूप शिव चराचरमें व्याप्त हैं और शुद्ध शान्त स्वरूप हैं, उन परब्रह्म अविनाशी श्रीसदाशिवजीको नमस्कार करके लोकोंके कल्याणार्थ मैं योगसन्ध्याको आरम्भ करता हूँ ।

ब्रह्मस्तुतिः ।

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानाम्पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥१॥

जो परमात्मा सब देवताओंके ऊपर तपता है अर्थात् जिसने अपने तेजके प्रभावसे सबको भयभीत कर रक्खा है (वशमें कर रक्खा है) और जो देवताओंको उपदेश करनेवाला है अर्थात् जिसके योग्य जो कार्य है उसको उसमें योजना करनेवाला है जैसे सूर्यको सबका प्रकाशककार्य, वर्षाधिपति इन्द्रको देवोंके

स्वामित्व और यमको जीवोंके पुण्य पापका निर्णयकर्ता, दंडका देनेवाला नियमित किया। ऐसे अन्योंको भी अथवा यज्ञादिकका उपदेश करनेवाला और तपके कर्मका बतलानेवाला है और जो देवताओंके पहिले उत्पन्न हुआ अर्थात् सृष्टिके पहिले विद्यमान था ऐसे प्रकाशमान परब्रह्मको नमस्कार है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

जिस परमात्माने सृष्टिके आदिमें ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और जिसने उस ब्रह्माको वेदोंका संप्रदान किया अर्थात् ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया उस बुद्धिके प्रकाश करनेवाले देवकी शरणको मैं मुमुक्षु प्राप्त होताहूं।

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्व्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

जो महर्षि (सर्वज्ञ) रुद्र संसारका स्वामी देवादिप्रपंचकी उत्पत्ति और स्थितिका कारण है और जिस रुद्र परमात्माने हिरण्यगर्भको सृष्टिके आदिमें उत्पन्न किया है वह परमेश्वर हमको सुन्दर बुद्धिसे संयोग करे अर्थात् सात्विक बुद्धिसे मिलावे।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।



यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

अवतीत्योम् ।

जो पालन करे अर्थात् त्रिविधतापोंका निवारण करे उसका नाम ॐ है ।

ॐकारके मुख्य दश नाम ।

ॐकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिनमेव च ॥
अनन्तश्च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेव च ॥
तुर्यं हंसं परब्रह्म इति नामानि जानते ॥

इस **ॐकार** ईश्वरके दश नाम मुख्य हैं, और जैसा नाम है तदनुसार गुण भी हैं, इन नामोंके भाष्यकारोंने बहुत प्रकारसे अर्थ किये हैं परन्तु विस्तारके भयसे नहीं लिखे ।

कठवल्लीउपनिषद् ।

एतद्धेवाक्षरं ब्रह्म चैतद्धेवाक्षरं परम् ।
एतद्धेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

यही अक्षर अपरब्रह्म (सगुण) और परब्रह्म (निर्गुण) है इसी अक्षर ब्रह्मको जाननेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त होजाताहै । यही उत्तम आधार है । यही उत्तम तारक है । इसको जानके ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै ।

पाद्मे–

चतस्रस्तस्य मात्राः स्युरकारोकारकौ तथा ।
मकारश्चावसानेऽर्द्धमात्रेति परिकीर्तिता ॥

उसकी अर्थात् इस प्रणवकी चार मात्रा हैं **अकार, उकार, मकार** और अन्तमें **कारणरूप** आधी मात्रा है ।

अकार उच्यते रुद्रो मकारश्च पितामहः ।
उकार उच्यते विष्णुस्तत्परं ज्योतिरोमिति ॥

अकार रुद्र मकार ब्रह्मा और **उकार विष्णु** कहे जाते हैं, तीनों मिलके **ॐ** हुआ इसीको **परम ज्योति** कहते हैं । कहीं **अकार विष्णु मकार महादेव** और कहीं अन्य प्रकार भी कहा है ।

---

१ यह चार मात्राका वर्णन नृसिंहतापनीयोपनिषद्में है ।

वायुपुराणे–मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत् ॥

मार्कण्डेयपु०–" मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः । तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् ॥ व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाऽव्यक्तसंज्ञिता । मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्धमात्रा परं पदम् ॥"

ध्यानबिन्दूपनिषदि–" ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः । अर्धमात्रासमायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः ॥ ब्रह्मविद्योपनिषदि " तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्निरूपिणः । शिखा तु दीपसंकाशा तस्मिन्नुपरि वर्त्तते । अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥

२ सारसंग्रहे–" ऋग्वेदः स्यादकारान्त उकारान्तं यजुर्मतम् । सामवेदो यकारान्तः सर्वग्राही ततो ध्रुवः । अकारः सोमरूपोऽथ उकारः सूर्य एव तु । मकारश्च महावह्निरिति तेजस्त्रयात्मकः ॥ " देवीभागवते–अकारो " भगवान् ब्रह्माप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम् । मकारो भगवान्रुद्रोऽप्यर्द्धमात्रा महेश्वरी ॥ उत्तरोत्तरभावेनाऽप्युत्तमत्वे स्मृतं बुधैः ॥"

पूर्वत्र भूश्च ऋग्वेदो ब्रह्माष्टवसवस्तथा। गार्हपत्यश्च गायत्री गङ्गा प्रातः सवस्तथा ॥ द्वितीया च भुवो विष्णू रुद्रोऽनुष्टुब् यजुस्तथा । यमुना दक्षिणाग्निश्च माध्यन्दिनसवस्तथा ॥ तृतीया च सुवः सामान्यादित्यश्च महेश्वरः । अग्निराहवनीयश्च जगती च सरस्वती ॥ तृतीयं सवनं प्रोक्तमथर्वत्वेन यन्मतम् । चतुर्थी यावसानेऽर्द्धमात्रा सा सोमलोकगा ॥ अथर्वाङ्गिरसः संवर्तकोऽग्निर्मरुतस्तथा । विराट् सभ्यावसथ्यौ च शुतुद्रिर्यज्ञपुच्छकः ॥ प्रथमा रक्तवर्णा स्याच्चतुर्थी शुक्लवर्णिनी ॥

(अ) पहिली अकाररूप मात्रामें **भूर्लोक, ऋग्वेद, ब्रह्मदेव-आठ वसु, गार्हपत्य अग्नि, गंगा नदी, गायत्री छन्द** और प्रातः सवन ये निवास करते हैं। (उ) दूसरी उकारमात्रामें **भुवर्लोक, विष्णु, रुद्र अनुष्टुप्छन्द, यजुर्वेद, यमुना नदी, दक्षिणाग्नि** और **माध्यन्दिन** सवन ये देवता निवास करते हैं (म) तीसरी मकारमात्रामें **स्वर्लोक, सामवेद, आदित्य, महेश्वर, आहवनीयाग्नि, जगती छन्द, सरस्वती नदी, अथर्ववेद** और तृतीय सवन ये निवास करतें हैं। (अर्द्धमात्रा) चौथी **अर्द्धमात्रामें सोमलोक, अथर्वाङ्गिरस गाथा, संवर्तक अग्नि,** महर्लोक, **विराट् सभ्य, आवसथ्य अग्नि, शुतुद्री नदी** और **यज्ञपुच्छ** ये देवता निवास करते हैं ॥ पहिली मात्रा **रक्तवर्ण** (लाल), दूसरी **भास्वर** प्रकाशमय, तीसरी **बिजलीकी वर्ण**-कीतरह और चौथी मात्रा **श्वेतवर्ण** है ॥

---

१ मतान्तरे-'कपिलगीतायां'-"ह्रस्वमात्रा दीर्घमात्राः प्लुतमात्रा प्रभेदतः । अर्द्धमात्राप्यनुचार्या मात्राः पंचकसंज्ञिताः ॥ १ ॥ अकारश्च उकारश्च मकारश्च त्रिमात्रिकम् । ईकारश्चैव ऐकारः पंच ं मातृसंज्ञिकम् ॥ २ ॥" ग्रन्थान्तरोंमें और बहुत मात्रायें कही हैं।

अपरं च, इस महामन्त्रकी व्याख्या कहांतक कोई करेगा वेद शास्त्र पुराणादि सब इसके अभ्यन्तर हैं। इसी महामन्त्रकी वन्दना **शेष शारदा** और **ऋष्यादि** अहर्निश किया ही करते हैं परन्तु वन्दना पूरी नहीं होती तो मनुष्य अल्पज्ञ कहांतक करेगा और लिखेगा ? केवल अपनी बुद्धिकी सीमा ही पहुंचाना है चाहे मनुष्य वेदशास्त्र सम्पन्न क्यों न हो परंतु विना तपस्याके इस मन्त्रका स्वाद दुर्लभ है " यथा—अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्साङ्गांश्च नारद। न जानाति तयोः सूक्ष्ममन्तरं विरतिं विना ॥" हे नारद! सब शास्त्रों और अंगसहित वेदोंको भी क्यों न पढले परन्तु जब तक अंतःकरणमें दृढ वैराग्य नहीं है तबतक वेदशास्त्रोंके तत्त्वको नहीं जान सकता अर्थात् **परब्रह्म** क्या है किस प्रकार जाना जाता है यह नहीं जान सकता[१]।

यही तारक मन्त्र है जिससे " न स पुनरावर्तते " अर्थात् जिसको जाननेसे फिर जन्म नहीं लेता इस लिये साधक (अभ्यासी) इसको साधनचतुष्टयसम्पन्न हो अभ्यास करे ॥

साधनचतुष्टय।

(प्र०—नित्याऽनित्यवस्तुविवेकः) नित्य आत्मा और अनित्य देहादिप्रपञ्च। इस देहादिप्रपञ्चसे विरक्त होके आत्माको पहिचानना यह प्रथम साधन है ॥

(द्वि०—इहामुत्रार्थफलभोगविरागः) इह नाम इस लोकमें राज्यसम्पत्त्यादिसुख—अमुत्र नाम वैकुण्ठ कैलास गोलोकादि स्वर्गलोकोंका सुख। इन दोनों विषयोंको प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसे नाशवान् जानके विरक्त होना। यह दूसरा साधन है ॥

(तृ०—शमदमादिषट्कसम्पत्तिः) "शमः कः, मनोनिग्रहः" दुष्टवासनासे मनको लौटाना। "दमः कः, चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः " रूपादिविषयोंसे नेत्र कान आदि इन्द्रियोंको रोकना; " तपः किम्, स्वधर्मानुष्ठानम् " ब्रह्मकर्म करना अथवा कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत करना अर्थात् वर्णादि धर्ममें तत्परता।

---

१ योगवासिष्ठे—" आचक्ष्व शृणु वा तात नाना शास्त्राण्यनेकशः। तथापि तव स्वास्थ्यं न सर्वविस्मरणादृते ॥" भागवते—" शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि। श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥"

" तितिक्षा का; शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् " ठण्डा गर्म सुख दुःख इनको समान समझना अर्थात् सुख होने पर बहुत हर्ष नहीं करना और दुःख होने पर घबराना नहीं, इसी प्रकार शीत उष्ण समझना और अपराध नहीं होते किसीने सताया हो तो भी क्रोध न करके सहन (क्षमा) करलेना । " श्रद्धा कीदृशी, गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः " सद्गुरुका कहा हुआ जो वेदवाक्य उसको विश्वाससे सत्य मानके स्वात्मरूपका अनुभव करना । " समाधानं किम्, चित्तैकाग्रता " चित्तको एकाग्र करना और प्रारब्ध योगसे जिस समयमें जो राज्यादिसुख अथवा नाना प्रकारके दुःख मिलें इन दोनों विषयोंमें हर्ष विषाद नहीं करता हुआ स्वस्थ अर्थात् परमानन्दमें रहना यह तीसरा साधन है ।

(चौ०-मुमुक्षुत्वं चेति, मोक्षो मे भूयादितीच्छा) मोक्ष मेरी कब होगी ऐसी इच्छा रखना अर्थात् जन्ममरणसे अलग कब होऊँगा और बुद्धिसे परे जो ब्रह्म उनको कब देखूंगा उनको दिखलानेवाले सद्गुरु कब प्राप्त होंगे, ऐसे अनुतापसे दिनरात उदासीन रहना यह चौथा साधन है ।

इस प्रकार साधक साधनचतुष्टयसम्पन्न हो प्रणवका निरन्तर ध्यान करनेसे त्रिविध तापको उल्लंघन (लांघ) करके परमानन्दको प्राप्त होता है । त्रिविध तापोंके नाम--आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक । इनकी व्याख्या यह है कि " आध्यात्मिक " दिन रात अन्तःकरणमें घर स्त्री आदिकी चिन्तासे क्षणभर भी मनका समाधान न हो अथवा कामक्रोधादिकोंसे सुखी या दुःखी होना अथवा शरीरमें ज्वरादि अनन्त रोगोंसे अत्यन्त दुःख पाना, " आधिभौतिक" व्याघ्र वृश्चिक (बिच्छू) चोर चुगुलादिसे त्रास पाना, "आधिदैविक" अनावृष्ट्यादिकोंसे अथवा दुष्कालादिसे दुःख पाना या भूतप्रेतादिसे व्याकुल होना । यह त्रिविध ताप दुःखका मूल और जन्म मरणका कारण है, जहांतक कि प्रणवस्वरूपी परमात्माका ध्यान न किया जायगा तहांतक इन तापोंसे निवृत्त

---

१ सांख्यसूत्रे-" अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः । " अर्थ-त्रिविध दुःखोंसे निवृत्त (छूटना) होना यही परमपुरुषार्थ है-" अत्यन्त दुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता " अर्थ-अत्यन्त दुःख निवृत्त होनेसे मुक्ति होती है ।

होना दुर्लभ है । साधनचतुष्टयसंपन्न अभ्यासीको तो प्रणवका पूरा आनन्द प्राप्त होताहै । यदि थोडे ही कालमें इस महामन्त्रका कुछ आनन्द देखनेकी इच्छा हो तो साधक एकान्त स्थान अर्थात् जहां पर दूसरेका शब्द श्रवणमें न आवे उस स्थलमें मनको एकरूप करके सिद्धासनसे या जिस आसनमें सुख पूर्वक बैठता हो बैठ, सीधा शरीर कर प्रणवका जप कुछ कालपर्यन्त नित्य किया करे परन्तु नेत्रोन्मीलन (आंख मूँद) करके अथवा नासिकाग्रदृष्टिसे प्रणवके रूपको देखता रहै जैसा कहा है––

सिद्धासनं समारुह्य समकायशिरोधरः[1] ।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ॥

इस तरहसे साधक अभ्यासको करता हुआ थोडेही कालमें अमृत सदृश आनन्दके बूंदोंका ग्रहण करने लगजाताहै । परन्तु इसमें भी चित्त शुद्ध किये विना कुछ नहीं (शून्यवत्) ।

इसलिये प्रथम मनको शुद्ध करना चाहिये. क्योंकि, यह मन बालककी तरह अज्ञान है अर्थात् जैसे बालकके साथ परिश्रम करनेसे बालक सुमार्गी होजाताहै इसी तरहसे महात्मा (सत्पुरुष) लोग मनके संग परिश्रम कर अर्थात् शनैः शनैः वैराग्यमार्गको दिखलाते २, दुःखरूपी विषयोंसेमनकोहटाते २, परमात्माके विलक्षण चरित्रोंको दर्शाते २, इस जगत्के प्रपञ्चको धिक्कारते २ परमानन्दस्वरूपको प्राप्त करादेतेहैं फिर वह मन विषयोंको कदापि ग्रहण नहीं करता । यथा--

ततो मनः प्रगृह्णाति परमात्मानमव्ययम् ।
यत्तदृश्यमनाग्राह्यमस्थूलाद्युक्तिगोचरम् ॥

१ कूर्मपुराणे–" दम्भाहङ्कारसंयुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः । अभ्यसेत्सततं ह्येतं प्राण वाख्यं सनातनम् ॥" योगशिखोपनिषदि--' नासाग्रे दृष्टिमारोप्य हस्तपादौ च संयतौ । मनस्सर्वत्र संगृह्य ॐ कारं तत्र चिन्तयेत् ॥ " श्रीमद्भागवते–" देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः । स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वंग ओमिति ॥ " ध्यानबिन्दूपनिषदि–हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरज्योतिर्निभाकृतिम् । अंगुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम् ॥"

यह मन अविद्याका अंश होनेसे इसमें जडता विशेष है क्योंकि इसीके संग होनेसे पुरुषको संसारकी प्राप्ति हुईहै।

स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम्।
तेनाविवेकजस्तस्मात्संसारः पुरुषस्य तु॥

यद्यपि यह विज्ञानात्मा है परन्तु मनका संग होनेसे अज्ञानके कारण इस पुरुषको संसारकी प्राप्ति हुईहै। इससे इसकी जडता (अज्ञानता) वैराग्यरूपी दंड और अविनाशी प्रणवस्वरूप श्रीसदाशिवजीके चरणके ध्यानरूपी अंकुशसे होजातीहै अर्थात् ध्यानके आनन्दसे मन स्वयं लय होजाताहै जैसे " वाद्यसे हरिण "।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्॥

इस श्रुतिके अनुसार अपने देहको अरणी करके ॐकारको उत्तर अरणी करे और ध्यानरूपी मथनीके अभ्याससे मथता छिपेहुए ॐकाररूपी परमेश्वरको अग्निकी तरह देखे यह ध्यानका क्रम है।

अरण्योर्मथनाद्यद्वदग्निः सर्वत्र दाहकः।
अविश्वासो न कर्तव्य आविर्भावो निजात्मकः॥

जैसे अरणी नामकी लकडी घिसनेसे सब काष्ठोंको जलानेवाली अग्नि सर्वकाष्ठोंमें प्रकट होती है इसी प्रकार विश्वास करके ध्यान करनेसे अपना आत्मा अपनेको प्रकट दिखाई देताहै॥

परन्तु विश्वास आदिका कारण मन ही है। जिस मनका वायुसे अधिक वेग, श्रेष्ठ नेष्टको स्वीकार करनेवाला, वासनाका रूप, सुख दुःखका मूल,

---

१ सांख्यसूत्रे-"महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः।" अर्थ-प्रकृतिका प्रथम कार्य महत्तत्त्व है वह महत्तत्त्व निश्चय करनेवाली बुद्धिवृत्ति मन है॥" योगवाशिष्ठे-"स आत्मा सर्वगो राम नित्योदितमहावपुः। यन्मनाङ्मननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते॥" भागवते-"मनः सृजति वै देहान् गुणान्कर्माणि चात्मनः। तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः। न्यायमुक्तावल्यां-साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते।

जिसकी चंचलताका नियम नहीं ऐसे मनको विना निदिध्यासके कैसे कोई वश करसकता है। यह मन दो प्रकारका है। यथा--मैत्रेय्युपनिषदि-

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं कामसंपर्काच्छुद्धं कामविवर्जितम् ॥

मन दो प्रकारका है-एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध । जो सकाम अर्थात् कामक्रोधयुक्त है वह मन अशुद्ध और इनसे रहित हो वह शुद्ध कहागयाहै ॥ और जब यही मन विचार करनेसे शुद्ध होता है तब आप ही अद्वैत (आत्मा) की प्राप्ति होती है । योगवासिष्ठे-

मनो दृश्यमिदं सर्वं यत्किंचित्सचराचरम् ।
मनसो ह्युन्मनीभाव अद्वैतमेव लभ्यते ॥

संसारमें चर और अचर यह जो कुछ दीखताहै यह सब मनहीका दृश्य है अर्थात् वास्तवमें कुछ नहीं और मनके लय होजाने पर पुनः द्वैतभाव नहीं रहता अर्थात् आत्माका लाभ होताहै ॥ इस लिये हरएक प्रकारसे मनहीका निरोध करना चाहिये ॥

मनकी गति ।

यह मन हृदयमें अष्टदल कमल पर विचरता रहताहै यथा (ध्यानबिन्दूपनिषदि)

पूर्वदले पीतवर्णे यदा विश्रमते मनः ।
तदा धैर्ये तथौदार्ये धर्मकीर्त्तौ मतिर्भवेत् ॥ १ ॥

---

१ मार्कंडेयपुराणे-" निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा संगमशेषतः । मनो ब्रह्मणि संधास्ये तज्जये परमो जयः ॥ " पाद्मे-" मनः करोति कर्माणि पातकैर्लिप्यते मनः । मनश्चेदुन्मनीभूयान्न धर्मैर्नापि पातकैः । उदकेन भवेत्पंकः स च तेनैव शुद्ध्यति । मनः करोति वै कर्म मुच्यते मनसैव तत् " । गौडपादीयकारिका मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम् । दुःखक्षयः प्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च ॥ " योगवाशिष्ठे-" एक एव मनो देवो ज्ञेयः सर्वार्थसिद्धिदः । अनेन विफलः क्लेशः सर्वेषां तज्जयं विना " ब्रह्मबिन्दूपनिषदि-" निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनो हृदि । यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ तावदेव निरोद्धव्यं यावद् व्द्धिगतं क्षयम् ॥ एतज्ज्ञानं च मोक्षं च अतोऽन्यो ग्रन्थावस्तरः ॥"

अग्निकोणदले रक्ते यदा विश्रमते मनः ।
तदा निद्रालुतालस्ये मंदा बुद्धिश्च जायते ॥ २ ॥
कृष्णवर्णे दक्षदले यदा विश्रमते मनः ।
तदा क्रोधे च द्वेषे च दुष्टत्वेऽपि मतिर्भवेत् ॥ ३ ॥
नैर्ऋत्ये नीलवर्णे च यदा विश्रमते मनः ।
तदा स्त्रीपुत्रवित्तादिमोहजाले भवेन्मतिः ॥ ४ ॥
पश्चिमे कपिले वर्णे यदा विश्रमते मनः ॥
तदा हासे विनोदे च ह्यानन्दे च भवेन्मतिः ॥ ५ ॥
वायव्ये श्यामवर्णे च यदा विश्रमते मनः ।
तदा तीर्थाटनं कृत्वा वैराग्यं प्राप्नुयान्नरः ॥ ६ ॥
उत्तरे पीतवर्णे च यदा विश्रमते मनः ।
तदा शृङ्गारभोगादिकरणे च भवेन्मतिः ॥ ७ ॥
ऐशाने गौरवर्णे च यदा विश्रमते मनः ।
तदा दयाक्षमाशान्तिज्ञानादौ च भवेन्मतिः ॥ ८ ॥
सन्धौसन्धौ मिश्रवर्णे यदा विश्रमते मनः ।
तदा रोगादिभिर्ग्रस्तो जायते च सदा ध्रुवम् ॥ ९ ॥
मध्यभागे सदा वर्णे यदा विश्रमते मनः ।
तदा शान्तौ समाधौ च चैतन्ये च भवेन्मतिः॥ १० ॥

इस प्रकार मनके चलनेकी गति है और इसीसे कहाभी है कि "नानाविधा मनोभेदाः" इस मनके अनेकों प्रकारके भेद हैं ॥ तथा च श्रुतिः-"कामःसंकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्धीर्ह्रीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति" अर्थ-कामोंकी कल्पना, विचिकित्सा (संशय), श्रद्धा, अश्रद्धा, धीरजता, अधीरजता, विवेक, लज्जा और भय ये सब मनहीके कार्य हैं ॥ और भी कथन (मन क्या है ?)

देवीभा०—इन्द्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम् । प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम् ॥ अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम् । लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक् च रसनमिन्द्रियम् । अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् । रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम् ॥ अर्थ—इंद्रियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरका अंश अर्थात् ईश्वर परमात्माका बिम्बभूत, इंद्रियविकार करनेवाला, देहधारियोंके स्वाधीन न रहनेवाला, निरूपण करनेमें अशक्य, देखनेमें न आनेवाला और बुद्धिके भेदवाला मन है। उसको ज्ञानेंद्रिय कहते हैं, नेत्र, कान, नासिका, त्वचा, रसना इंद्रियोंका तथा अंगियोंका अवयवरूप और सब कर्मोंका प्रेरक है । इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे रिपुरूप दुःखदायी होता है । सद्विषयोंमें आसक्त होनेसे मित्ररूप सुखदायी है इस लिये इसकी समझ बहुत करके सद्गुरुहीसे प्राप्त होती है। अथवा पूर्णरीतिसे निदिध्यास करनेसे स्वयं मिलती है—जब इस मनको साधनादिसे शुद्ध कर एकदेश (एकाग्र) में लावे तब महामन्त्ररूपी धनुष और आत्मारूपी बाणसे निशानारूप ब्रह्ममें वेधे, (लगावे—मारे) तब परमानन्दकी प्राप्ति होती है । जैसी श्रुति है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ १ ॥

परन्तु आत्मा क्रम २ से प्राप्त होता है ।

यथा श्रुतिः—तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः । एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ २ ॥

जैसे तिलोंमें तेल, दधिमें घी, स्रोतोंमें जल, अरणियों (लकडी) में अग्नि ऐसे आत्मामें ही यह आत्मा ग्रहण किया जाता है। जो सत्य और तप-

---

१ भागवते—अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् । धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ।

२ घृतमिव पयसि निगूढं भूतेभूते च वसति विज्ञानम् । सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ॥

स्यासे इसे देखता है उस पुरुषसे यह देखा जाता है अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासके करनेसे ही आत्माको देख सकता है। जैसा कहा है–

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

यह संपूर्ण भूतोंमें गुप्तरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता परन्तु संपूर्णमें वर्त्तमान है सूक्ष्मदर्शी अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन साधना करनेवाले पुरुषोंको उग्र बुद्धिसे दीखता है दूसरे मनुष्यको नहीं॥

इस विद्याके अभिलाषी पुरुष प्रथम तो पात्र हो और द्वितीय सत्पुरुषके समीप सत्संग करके अभ्यास करे तब वह अधिकारी होता है, कारण कि विना पात्रत्वके उत्तम वस्तु देने पर ठहर नहीं सकती जैसा पिघला हुआ घी पत्तेपर रखनेसे पृथ्वीपर गिर पडता है इसी तरह अधिकार प्राप्त हुए विना भार नहीं संभाल सकता अर्थात् जैसे अमीरोंको घृत दुग्ध अधिक सेवन करनेसे वादी करके शरीर फूल जाता है आधा मील चलना कठिन होजाताहै और वही परिश्रम करनेवालेको वीरता देता है, पहलवान (मल्ल) होते हैं इसका सारांश पाचनशक्ति है, पचनेसे अर्थात् शनैः २ अभ्यास करनेसे ज्ञानेकी प्रबलता और कामक्रोधादिरूपी विकारोंसे आरोग्यता रहती है और न पचनेसे अर्थात् अभ्यास न करनेसे और केवल वाग्विलास ही रखनेसे अभावरूपी मन्दाग्नि उत्पन्न होकर नाना प्रकारके कामक्रोधादिकोंके दुःखरूपी रोगोंकी वृद्धि होती है जिससे फिर कहांका कहां चला जाता है।

जैसा कि वर्त्तमान कालमें अनधिकारियोंके घरमें भी बहुत ग्रन्थ रक्खेहैं तो क्या वह पढनेसे अधिकारी होगये, नहीं नहीं, उनको अभावरूपी मन्दाग्नि है और भी वर्त्तमान कालमें जिनको कामादिककी चेष्टा है वह पुरुष बहुत करके वेदान्ती और शाक्त होते हैं क्योंकि धर्मशास्त्र ग्रन्थ माननेसे इच्छानुसार भोजन

---

१ तु. रा. “ कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक। होइ घुनाक्षरन्याय ज्यों पुनि प्रत्यूह अनेक॥ ” २ भागवते–“ नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि। एवं नियमकृद्राजञ्शनैः क्षेमाय कल्पते॥”

और कामादिकका सेवन यथार्थ रीतिसे नहीं होता इससे उनको वेदान्तग्रन्थ अवलोकन करना, ब्रह्मज्ञानी मनसे बनना यह बहुत पसन्द आता है तो क्या केवल वाग्विलासहीसे अधिकारी होता है नहीं २ लक्षण होना चाहिये जैसा—

मोहो मद्यं मतिर्मुद्रा माया मीनो मनः पलम् ।
मूर्च्छनं मैथुनं यस्य तेनासौ शाक्त उच्यते ।

मोह जो देहाभिमान वही है मदिरा, विषयभोगकी चिन्ता वही है मुद्रा, माया जो भ्रान्ति वही है मछरी और मनके संकल्प विकल्प वही है मांस—इन चारोंको मूर्च्छित करके अर्थात् आधीन करके शान्तभावकी प्राप्ति यही मैथुनका आनन्द प्राप्त है जिनको उन्हींको शाक्त कहते हैं, केवल मद मांसके खानेसे शाक्त नहीं होसकता । ये शाक्तके लक्षण हैं। ये अधिकारी कहे जाते हैं । और श्रुति भी है कि मद्य (शराब–दारू) सेवन निषिद्ध है। जैसे छान्दोग्य उ०—

हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमाश्चाचरꣳस्तैरिति श्रुतेः ।

सुवर्णका चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे भोग करनेवाला और ब्राह्मणका वध करनेवाला यह चार महापातकी गिरते हैं अर्थात् इनकी अधोगति होती है और पांचवां जो उक्त महापातकियोंके साथ आचरण व्यवहार करता है। वेदान्तीके लक्षण यह हैं—

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्ष्यमशनं पानं सरिद्वारिषु
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशानेवने।

---

१ मनुः—वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् । नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥" अर्थ–जो सौ वर्ष तक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेध यज्ञ करता है और जो मरणपर्यंत मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है । प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है अर्थात् जीवहिंसा करनेसे स्वर्ग न प्राप्त होकर नरकमेंही जाता है, इससे मांसका खाना छोडदेना चाहिये । महानिर्वाणतन्त्रे–" पिबेन्नातिशयं मद्यं शोधितं वाप्यशोधितम् । त्याज्यो भवति कौलानां दंडनीयोऽपि भूभृतः ॥"

वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही
संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥१॥

जो चिन्ता और दीनतासे रहित, भिक्षा माँगकर खाते, नदियोंका जल पीते, स्वाधीन होकर किसीके वशमें नहीं रहते और निर्भय रहते हैं, श्मशान या वनमें सोजाते हैं, वस्त्रके धोने और सुखानेसे रहित, दिगम्बर (नग्न) रहना, भूमिमें सोना, वेदान्तरूपी मार्गोंमें विचरना है जिनका, ऐसे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममें रमण करते हैं ॥

क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराजविभवः
क्वचिद्भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ।
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदित-
श्चरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः ॥ २ ॥

कहीं मूर्ख, कहीं पंडित, कहीं महाराजाके समान विभवधारी, कहीं भ्रान्त-चित्त (पागल), कहीं सावधान, कहीं जङ्गलियोंकेसे आचरण युक्त, कहीं सत्पात्रसे दीखते, कहीं अपमानके योग्य, कहीं छिपे हुए इस प्रकार परमानन्दसे युक्त सुखपूर्वक बुद्धिमान ब्रह्मज्ञानी विचरते हैं। ये वेदान्ती कहे जाते हैं, इस प्रकारसे रहनेवालेको ब्रह्मज्ञानी कहना चाहिये।

ऐसे स्थितिवाले यदि कर्म उपासनाका परित्याग करदें तो कुछ हानि नहीं--

आत्मानमात्मना पश्यन्न किञ्चिदिह पश्यति ।
तदा कर्मपरित्यागे न दोषोऽस्ति मतं मम ॥

जब ज्ञानी आत्मासे आत्माको देखे और सब वस्तुका अभाव जानपडे तब कर्मको त्यागदेनेमें कुछ दोष नहीं यह हमारा मत है। (यह शिवसंहितामें श्रीशिवजीमहाराजका वचन है)। और भी मैत्रेय्युपनिषद्का वचन है--

मृता मोहमयी माता जातो बोधमयः सुतः ।
सूतकद्वयसंप्राप्तौ कथं संध्यामुपास्महे ॥

मोहरूपी माता मरी और बोध (ज्ञान) रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ तो दो सूतकके लगनेसे कैसे सन्ध्योपासन करैं ।

हृदाकाशे चिदादित्यः सदा भासति भासति ।
नास्तमेति न चोदेति कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥

हृदयरूपी आकाशमें चैतन्यरूपी सूर्य सदैव (हमेशा) प्रकाशमान है वह न कभी अस्त होता है न उदय होता है तब हम सन्ध्या कैसे करैं ॥ यह शुद्ध ज्ञानियोंके वास्ते ही क्रम है क्योंकि ऐसी स्थितिवाले कोई विरलेही होतेहैं यथा श्रुतिः " कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत " कोई धीर पुरुष आत्माको सर्वत्र देखतेहैं और यही पुरुष--

संवीतो येन केनाश्नन् भक्ष्यं वाभक्ष्यमेव वा ।
शयानो यत्र कुत्रापि सर्वात्मा मुच्यतेऽत्र सः ॥

जीवन्मुक्त किसी प्रकारके वस्त्र धारण करे वा नग्न रहे भक्ष्य अथवा अभक्ष्य कुछ भी खाय, चाहे जहां शयन करे वह प्रारब्धकर्मके क्षय (नाश) होजानेसे मुक्त होजाता है ।

तीर्थे चाण्डालगेहे वा यदि वा नष्टचेतनः ।
परित्यजन्देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते ॥

तीर्थमें व चण्डालके घरमें देह त्याग करे अथवा ब्रह्मका चिंतन करता हुआ किंवा अचेतन होकर मृतक होजाय वह ज्ञानके बलसे मुक्त ही होजाता है ।

परन्तु यह बात स्मरण रहे कि यह आचरण साधक अवस्थाके नहीं है अर्थात् जब साधनचतुष्टय सिद्ध नहीं हुआ और बीचहीमें उक्त आचरणको धारण कर लिया तो वह शुद्ध ज्ञान नहीं कहा जायगा किन्तु नीचे गिरनेका मार्ग लिया जैसा "प्रथम" साधन नित्यानित्यके निर्णयमें उनको नित्य, परमात्मा, अविनाशी यही निश्चय हो अनित्यका ख्याल ही नहीं होता अर्थात् सब प्रकारसे प्रपंचरहित आत्माहीको देखते रहते हैं । " दूसरा " इस लोकका सुखादि और वैकुंठ स्वर्गादिके सुखादिकोंकी कभी इच्छा उत्पन्न ही नहीं होती ऐसे ही

" तीसरा " शमदमादिमें भी अर्थात् मन कभी किसी प्रकारकी कल्पना ही नहीं करता तब निरोध किसका किया जाय कारण कि " वल्कलानि तथा पश्चाल्लभते सारमुत्तमम् " जैसे केला (कदली) के छिलकोंको निकालते २ उत्तम सार प्राप्त होजाय ऐसे मनके विकल्परूपी छिलकोंका नाश करके साररूपी आत्मा प्राप्त कर लियाहै जिन पुरुषोंने, पुनः उनको किसी प्रकारकी इच्छाका क्या प्रयोजन रहा; एवं सिद्ध अवस्थामें विचरते सुख, दुःख, शीत उष्ण, मानाऽपमान, राग द्वेष आदिसे रहितहुए पुरुषकी उक्त स्थिति कही। श्रुतिः–"तरति शोकमात्मवित् " इति। ये ही पुरुष त्रिविध तापरूपी शोकोंसे तरता है। " श्रुतिः मुण्डके--स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या-ब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति "। अर्थ–जो कोई निश्चय कर एक अद्वितीय ब्रह्महीको जानताहै वह ब्रह्मही होताहै और उसके कुलमें ब्रह्मका न जाननेवाला नहीं होता और शोकको तरता है, पापको तरता है अर्थात् इनसे निवृत्त होजाता है और गुहा अर्थात् बुद्धिके अज्ञानरूपी भ्रमसे छूटकर मुक्त होजाता है। वही ब्रह्मको प्राप्त होताहै और वह ब्रह्मरूप ही है। यथा श्रुतिः–

" ब्रह्मविदाप्नोति परम्। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ॥

जो गृहस्थ विना स्थितिके कर्म उपासनाका त्याग कर वेदान्त पर प्रीति करताहै वह अवश्य ही अधोगतिका अधिकारी होताहै इसमें कुछ संदेह नहीं॥

वेदान्तको संन्यासी, ब्रह्मचारी व गृहस्थही जिसने प्रपंचको त्याग दिया है वह सत्पुरुषके पास जाकर उपदेशले धारण करे तब तो ठीक है और दूसरेको तो वही मन्दाग्निही है। इसीसे विना चित्तशुद्ध किये वेदान्तशास्त्रका अधिकारी नहीं होता अर्थात् जब त्याग वैराग्यकी इच्छा करे तब सद्गुरुके पास जाकर वेदान्तशास्त्रको श्रवण करे। यथा शुकरहस्योपनिषदि–

---

१ पंचदश्यां--"य एवं ब्रह्म वेदैष ब्रह्मैव भवति स्वयम्।
ब्रह्मणो नास्ति जन्मातः पुनरेष न जायते ॥

श्रवण मनन आदिसे ज्ञान ।

श्रवणं तु गुरोः पूर्व्वं मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम् ॥

पहिले गुरुमुखसे श्रवण अथवा अध्ययन (पढना) करे पश्चात् उस श्रवण करीहुई विद्याको मनन (विचार) करे, तदनन्तर अभ्यास पर आरूढ हो तब वह पूर्णबोधका अधिकारी होताहै तभी उसको आनंदानुभव प्राप्त होताहै । गुरुके पास जानेका क्रम, श्रुति मुण्डके–

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।

वह समिध (गुरुके उपयोगवस्तु) हाथमें लिये नम्रतापूर्वक विशेष ज्ञानके लिये (परमपदप्राप्त्यर्थ) वेदशास्त्रसंपन्न दयावान् ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् तपश्चर्या करनेवाले गुरुके समीप शरणको प्राप्त होय सेवामें तत्पर होजावे । क्योंकि, सद्गुरुकी प्रसन्नतासे आत्मदर्शनका लाभ होता है । यथा महामुनिकपिलवचनम्–

अनेकजन्मसंस्कारात्सद्गुरुः सेव्यते बुधैः ।
सन्तुष्टः श्रीगुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत् ॥

बहुत जन्मोंके पुण्य उदय होनेसे पंडित लोग सद्गुरुकी सेवा करते हैं तब वह श्रीगुरुदेव संतुष्ट (प्रसन्न) हो समझा बुझाके आत्मरूपको दिखाते हैं ।

---

१ योगशिखोपनिषदि–" कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद् दृढम् । अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम् ॥ " २ गीतायां–" तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः । " गुरुलक्षणं ब्रह्मोत्तरखण्डे–" गुरवो निर्मलाः शांताः साधवो मितभाषिणः । कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥ एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिध्यति ॥ " शिष्यलक्षणम् नवरत्नेश्वरे–"शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः । समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यती ॥ एवमादिगुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ॥" पाद्मे–" श्रद्धालुर्मुक्तिमार्गेषु वेदान्तज्ञानलिप्सया । उपायनकरो भूत्वा गुरुं ब्रह्मविदं व्रजेत् ॥ " आत्मपुराणे–" इदं सुदुर्लभं ज्ञानं जन्मकोटिशतायुतैः । प्राप्यते पुरुषव्याघ्रैर्गुरुशुश्रूषणादिना ॥"

कारण कि, जाना हुआ भी अर्थात् पढा भी है तथापि विना गुरूके भ्रम नहीं निवृत्त होता है । यथा योगवाशिष्ठ--

स्वकण्ठेऽपि स्थितं वस्तु यथा न प्राप्यते भ्रमात् ।
भ्रमान्ते प्राप्यते तद्वदात्मापि गुरुवाक्यतः ॥

जिस प्रकार अपने कण्ठ (गला) में स्थित हुई मालादिक वस्तु भ्रमसे नहीं मिलती और भ्रमका विनाश होजाने पर मिल जाती है इसी प्रकार गुरुओंके उपदेशसे आत्माकी प्राप्ति होजातीहै और केवल पुस्तकोंको बाँच याद करलेनेसे कर्म उपासनाका भी त्याग होजाताहै जो कर्म उपासना मरणपर्यंत गृहस्थको त्यागना योग्य नहीं है । जैसी श्रुति है--

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥

कर्मको करताही हुआ सैकडों वर्ष जीनेको चाहो, ऐसा ही करनेसे दुष्कृति (पाप) से लिप्त न होगे दूसरी तरह नहीं, किन्तु कर्महीसे तुम्हारी सद्गति होगी इसमें सन्देह नहीं । और केनोपनिषद्में कहा है कि तप, दम कर्मादिसे ही ब्रह्मविद्या प्राप्त होतीहै । यथा--

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ।

जिसकी अर्थात् ब्रह्मविद्याप्राप्त्यर्थ तप, दम, कर्म आदि उपाय हैं । शिक्षा आदि छः अंगों सहित वेद चार चरणवत् हैं और सत्य निवासस्थान है । क्या पूर्वके ऋषि-

---

१ भागवते—"अथाभ्रे ऋषयः कर्माणीहन्ते कर्महेतवे । ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥" अर्थ–इस कारण ऋषि भी मोक्षके लिये पहिले कर्म करते हैं- क्योंकि, निष्काम कर्म करनेवाला पुरुष ही प्रायः किसी प्रकारकी इच्छा न करनेवाला होता है "न चरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञो जितेंद्रियः । विकर्मा ह्यन्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥" जो मनुष्य इन्द्रियोंके न जीतनेके कारण जानबूझके वेदके कहेहुए कर्मोंको नहीं करता है वह कर्मलोप होनेके कारणसे वारंवार जन्ममरणका अधिकारी होता है। कूर्म्मपुराणे—" कार्य्यमित्येव यत्कर्म्म नियतं संगवर्जितम् । क्रियते विदुषा कर्म्म तद्भवेदपि मोक्षदम् ॥"

लोग मूर्ख रहे जो अग्निहोत्र[1] यज्ञादिक कर्मकाण्डको न त्यागकिया जो कि ऋषिलोग पूर्ण ब्रह्मज्ञानी और दश २ सहस्र वर्ष पर्यन्त समाधिस्थ रहते रहे। अब तो विकारी मनकी प्रबलतासे अष्टोत्तरशत ईश्वरका नाम लेनेको भी सावकाश नहीं मिलता तो बांचनेसे ही अपनेको वेदान्तवेत्ता ब्रह्मज्ञानी मान लेते हैं यह बडी अज्ञानता है।

वैराग्यकी प्राप्ति।

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुसां वैराग्यादिचतुष्टयम्[2]॥

अपने २ वर्णाश्रमका धर्माचरण करनेसे तथा ईश्वरकी आराधना, करनेसे मनुष्यको वैराग्यादि चार साधन प्राप्त होते हैं। वर्णाश्रमका धर्म यही श्रेयस्कर और मुक्तिका दाता है। वर्णाश्रमके धर्ममें तत्पर रहते हुए ऊपर लिखे हुए क्रमसे जो पुरुष महामन्त्रका अभ्यास करेगा वह अवश्य ही आनन्दको प्राप्त होगा।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकारं तं नमाम्यहम्॥

बिन्दु सहित ॐकार[3]को योगी निरन्तर ध्यान करते हैं यह ॐकारका ध्यान मनोवांछित (इच्छानुसार) सिद्धि और मोक्ष दोनोंको देनेवाला है। तिस ॐकारको मेरा नमस्कार है।

जो मनुष्य परब्रह्मस्वरूप समझकर ध्यान किया करेगा उसको अवश्य परमात्मा क्या है यह जान पडेगा, कारण कि विना ध्यान किये चित्त स्थिर नहीं

---

१ श्रुतिः–"अहरहरनुष्ठीयमानैर्यज्ञादिभिर्विशुद्धेऽन्तःकरणे प्रत्यहं प्रकृष्यमाणा विद्योत्पद्यते" अर्थ–दिन २ प्रति अनुष्ठान कियेगये यज्ञ आदिकोंसे यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंसे शुद्ध हुए अन्तःकरणमें प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होनेवाली विद्या उत्पन्न होती है। २ कपिलगीतायां– "ज्ञानं विरागो नियमो यमश्च स्वाध्यायवर्णाश्रमधर्मकर्मा। भक्तिः परेशस्य सतां प्रसंगो मोक्षस्य मार्गं प्रवदन्ति सतः॥" ३ वायुपुराणे–"इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम्। यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः। संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः। अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयः॥"

होता और जहां तक चित्त[1] स्थिर नहीं होगा तहां तक ध्यानमें रूप नहीं दर्शित होसकता विना दर्शित भये मन ठहरता नहीं तो स्वाद कहांसे मिलेगा और रूप देखते २ ज्यों २ आनन्द भासित होगा त्यों २ यह मन सूक्ष्मदर्शी होता जायगा, जब मन सूक्ष्मदर्शी होजायगा तब परमात्मा निराकार, निरंजन, निरामय, निर्विकल्प अथवा साकार, व्यापक किस प्रकारसे है यह आपसे आपही भासित होगा परंतु जब शुद्ध मन करके ध्यान करेगा तभी यह आनंद देखेगा, क्योंकि. यथा— पंचदश्याम्—

अनात्मबुद्धिशैथिल्यं फलं ध्यानाद्दिनेदिने ॥

ध्यान करनेसे दिन २ अनात्मबुद्धि अर्थात् आत्मा जाननेमें जो बुद्धिका विकार होता है उसकी शिथिलता अर्थात् वह नष्ट होती है। विकार नष्ट होनेसे ध्यान आपही शुद्ध होगा और जो कोई चाहे कि, अभ्यास भी न करना पडे, ईश्वरानुभव प्राप्त होजाय अर्थात् वाग्विलासहीसे समझलें तो यह कदापि नहीं। होसकता क्योंकि परमात्मा तो—

मुंडकश्रुतौ।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

यह आत्मा नित्य सत्यसे प्राप्त होने योग्य है, तप[2]से प्राप्त होने योग्य है, यथार्थ आत्मज्ञानके दर्शनसे प्राप्त होने योग्य है और नित्य ब्रह्मचर्यसे प्राप्त होनेयोग्य

---

१ मैत्र्युपनिषदि—"चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्। यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥" श्रीमद्भागवते—"चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्। गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥"

२ मैत्रायण्युपनिषदि—"तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात्संप्राप्यते मनः। मनसा प्राप्यते त्वात्मा ह्यात्मापत्त्या निवर्तते ॥" पतञ्जलिः—"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।" अर्थ— तपसे अशुचि (अज्ञान) के नाश होनेसे शरीर व इन्द्रियोंकी सिद्धि होती है अर्थात् अणिमादि सिद्धियोंका लाभ होताहै (अन्यच्च) "मनसश्चेन्द्रियाणामैकाग्र्यं परमं तपः।" मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता परम तप है ॥ "तपःप्रवृद्धिर्मनसः प्रसन्नता सुरप्रसादोपि हि दैन्यसंक्षयः। द्रुतं प्रवेशश्च तथैव संयमे जितेन्द्रियस्येह किलोपजायते ॥"

है । तथा च श्रुतिः—अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्येति । अर्थ—उग्र तपकरके, ब्रह्मचर्यकरके, भक्तिकरके और विद्याकरके आत्माको ढूँढो । सांख्यसूत्रे—

तत्त्वाभ्यासान्नेतिनेतीतित्यागाद्विवेकासिद्धिः ।

'यह नहीं है, यह नहीं है' इस त्यागरूप तत्त्व अभ्याससे विवेककी सिद्धि है अर्थात् मैं शरीरसे भिन्न सुख दुःख काम क्रोध आदिसे रहित हूँ ऐसा विचार कर स्थिति करनेसे आत्माका लाभ होता है--केवल श्रवण करनेसे नहीं । यथा सांख्ये—

न श्रवणमात्रात्तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।

अनादि (जिसकी संख्या नहीं) वासनाके बलवान् होनेसे केवल सुननेसे ही मोक्षकी सिद्धि अर्थात् आत्मलाभ नहीं होता । यह आत्मलाभ उन्हीं पुरुषोंको होता है जो शमादियुक्त हैं । यथा गौडपादीयकारिकायाम्—

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ।
निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ॥

राग, भय क्रोधादिसे रहित मुनि और वेदके जाननेवाले पुरुषोंकरके सब कल्पनासे रहित और द्वैतभेदके विस्ताररूप प्रपंचके अभाववालेसे अद्वैतरूप यह आत्मा देखा वा जाना जाता है और न मलिन चित्तवालेसे न तार्किकादिकोंसे । श्रुतिः—"नैषा तर्केण मतिरापनेया" इस लिये प्रथम सगुण उपासना करे अर्थात् शिव, विष्णु, शक्ति आदि जिस पर अनन्य प्रीति हो उसीको प्रणवस्वरूप मानकर शिव विष्ण्वादिकी मूर्त्तिका ध्यान करे, अर्थात् प्रणवका जप

---

१ योगचूडामण्युपनिषदि—"शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा । न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥" ध्यानबिन्दूपनिषदि—"ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः । अर्धमात्रासमायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः ॥ तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् । अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ॥" पतञ्जलिः—तस्य वाचकः प्रणवः—अर्थ उसका वाचक प्रणव है अर्थात् ईश्वरके प्राप्त होनेका मुख्य उपाय प्रणव है । जिसके द्वारा पदार्थका बोध हो उसको वाचक कहते हैं । "तज्जपस्तदर्थभावनम्" प्रणवका जप करनेसे और अर्थ विचारनेसे—

करता हुआ प्रथम स्थूल मूर्तिका ध्यान करे साध्य होजानेपर उससे सूक्ष्म (छोटी) मूर्तिका ध्यान करे। श्रीमद्भागवते–" श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपे भगवतो यतिः। स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेत् "–साधक भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों स्वरूपोंको सुनकर पहिले मनको स्थूलमें लगावे पश्चात् स्थिर होजाने पर धीरे २ बुद्धिके द्वारा सूक्ष्म रूपमें लगावे। पुनः इसी क्रमसे उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृष्टि करते २ मूर्तिका अभाव होजाने पर परमात्माका आनन्दाऽनुभव अर्थात् महान् प्रकाश दर्शित होगा और उस समय इच्छा करनेसे इष्टदेवका दर्शन यथार्थ होता है और निराकार साकार समझनेकी बुद्धि उत्पन्न होगी। इसी अभ्याससे दिव्यदृष्टि सिद्ध होती है क्योंकि आत्माका अत्यंत सूक्ष्म रूप महान् प्रकाशमय होनेके कारण रूपके अभावसे प्रकाश ही प्रकाश देख पडता है। यथा श्रुतिः--" अणोरणीयान् " वह आत्मा परमाणुसे भी अत्यंत सूक्ष्म है इससे वह प्रकाश ही आत्मरूप समझा जायगा।

विचारदर्पणे यो वै यत्नात्सूक्ष्मं विलोकयेत्।
दृश्यते यत्र यद्रूपं नूनं तन्न स्वकात्पृथक्॥

विचाररूपी दर्पण (सीसा-आदर्श-आईना) में उपाय करनेसे अर्थात् अभ्यास करनेसे ज्ञानदृष्टिसे देखनेमें जो रूप देख पडता है और निश्चय होताहै वह रूप निःसंदेह अपने आत्मासे भिन्न नहीं है। यदि कोई विना अभ्यासके ही वार्ताओंसे समझा चाहे तो वहां वाग्विलासी बुद्धि नहीं पहुंच सकती कारण कि जब स्थूलहीको नहीं समझसकते तब सूक्ष्मको किसतरह समझेंगे ? जैसा श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में जीवका आकार कहा है--

जीवका स्वरूप।

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

–समाधि होतीहै " ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" तब परमात्माका ज्ञान होता है और परमात्माके जाननेमें जितने आलस्य, संशय, जडतादि विघ्न हैं वह सब नाश होजाते हैं।

१ श्रीमद्भागवते-" जिताश्नो जितश्वासो जितसंगो जितेन्द्रियः।
स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया॥ "

केशके अग्र भाग (बालकी नोंक) का सौवां भाग उसका भी सौवां (शतांश) भाग (हिस्सा-विभाग)[1] करके जो प्रमाण किया जाय वही सूक्ष्मता जीवकी है। इसपर मेरा ऐसा कथन है कि केशके अग्रभागके सौ टुकडे (कुटके) किस तरह होसकते हैं ? पुनः उसका शतांश भाग समझना तो श्रवणमात्र और कथनमात्र है, अर्थात् नहीं समझा जाता। यहां पर बुद्धि किसी तरह नहीं पहुँच सकती-

कठवल्लीश्रुतिः।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

न वाणीसे, न मनसे, न नेत्रसे पानेको समर्थ है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेति श्रुतेः।

जिससे वाणियां अप्राप्त होके (न पहुँचकर) मन करके सहित निवृत्त होतीहैं अर्थात् हार (थक) जातीहैं।

मूर्तिपूजन।

हे भाइयो ! जिसमें बुद्धि नहीं पहुँच सकती उसको विना निदिध्यासहीके समझा चाहते हो. क्योंकि, जो सगुण उपासना अर्थात् मूर्त्तिमानका ध्यान जो समझने योग्य और प्रत्यक्ष देख रहे हो और सनातनसे मूर्त्तिपूजन, ध्यानका क्रम चला आया और अभी चला जाताहै उसमें चित्त नहीं लगता बल्कि निन्दामें तत्पर हो तो क्या कर्म उपासनाका त्याग करना, कामक्रोधादिककी गठरी शिर पर रखना, निन्दा करनेमें किसी देवताको छोडना नहीं, निदिध्याससे मतलब नहीं, अहं ब्रह्म २ बकते रहना क्या ब्रह्मवेत्ताके यही लक्षण हैं ?

मैत्रेय्युपनिषदि-

अनुभूतिं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिम्बितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत्॥

जिन मूर्खोंको ब्रह्मका अनुभव अर्थात् सम्यक् प्रकारका ज्ञान तो है नहीं केवल वाग्विलासहीसे ब्रह्मज्ञानी बनते हैं उनको ऐसा समझना चाहिये कि जैसे

---

१ श्रीमद्भागवते--द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥

कोई नकली वृक्षके फलके स्वादकी इच्छामें प्रसन्न होताहै। इस वचनके व्यवहारमें क्या लाभ है ?

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाश्च ये नराः।
न तत्पदं प्राप्नुवन्ति पुनरायान्ति यान्ति च ॥

जो नर "अहं ब्रह्म २" कहनेमें तो कुशल हैं, परन्तु आचरण शुद्ध नहीं है वे मुक्त नहीं होते। पुनः २ जन्म लिया ही करतेहैं। योगवाशिष्ठे–

अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्म तद्विस्मृतं नृणाम्।
यदसत्यमविद्याख्यं तत्पुरः परिवल्गति ॥

अहहा ! यह बडी विचित्र और विचार (आश्चर्य) करनेकी बात है कि, जो साक्षात् सत्यस्वरूप ब्रह्म है मनुष्योंने उसको तो विसार दिया और जो असत्य अज्ञान अर्थात् अविद्या[1]रूप है यह साक्षात् अगाडी प्रकाशित होरहाहै। इससे हे भाइयो ! इस अज्ञानका परित्याग कर कामक्रोधादिकको शान्त करो। निन्दाको छोडो "सर्वचांडालनिन्दकः" मनुष्यकी निन्दा करनेवालेको चांडाल कहतेहैं और देवताओंकी निन्दा करनेसे तो बुद्धिकी भ्रष्टता ही है इसलिये बुद्धिको सुधारना चाहिये और सगुण उपासनामें चित्त लगाना चाहिये, सगुणहीसे निर्गुण होता है–

शर्करा जलसंयुक्ता शर्करात्वं हि गच्छति।
सगुणं ध्यायतो नित्यं निर्गुणत्वं तथोच्यते ॥

जैसा जलमें मिलनेसे शक्कर पूर्वरूप जल होजातीहै ऐसीही नित्य प्रति सगुण (मूर्तिमान) के ध्यान करनेसे निर्गुण होजाताहै[2]। देखिये, मूर्त्तिके विषयमें जो

---

१ पतञ्जलिः–" अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या " अर्थ–अनित्यको नित्य समझना, अपवित्रको पवित्र समझना, दुःखको सुख समझना और अनात्माको आत्मा ज्ञान करानेवाली बुद्धिको अविद्या कहते हैं। वैशेषिकसूत्रे–" इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या। " अर्थ–इन्द्रियोंके दोषसे और संस्कारके दोषसे अविद्या होती है।

२ (तु. रा.) " जो गुणरहित सगुण सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥ फूलें कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भए जैसे ॥"

भ्रम है अर्थात् ब्रह्म मूर्तिमान नहीं है, यह समझ किसी तरह ठीक नहीं पाई जाती। यदि यह कहाजाय कि श्रुतिः—"न तस्य प्रतिमा अस्ति" उस ब्रह्मकी प्रतिमा नहीं है, ऐसा वेदमें लिखा है तो यह भी वेदकी श्रुति है "अणोरणीयान्" परमाणुसेभी अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) है। अब विचार कीजिये कि परमाणुको ही देखना कठिन है तो उससे सूक्ष्मका पता किस तरह कहा जायगा ? कि अमुक स्वरूप है परन्तु वह अत्यन्त सूक्ष्म है जब "है" ऐसा सिद्ध हुआ तो मूर्त्तिमान् अवश्य है, चाहे वह जिस स्वरूपका हो, परन्तु अज्ञानताके कारण न दिखाई देनेसे स्वरूपकी हानि नहीं पाई जाती। और यह बात तो आजकल बली बुद्धिमान् भी मानते हैं कि जैसी कोई एक वस्तु बहुत अच्छी चमकीली बहुमूल्य (भारी कीमतकी) बडे दुर्गम बर्फोंके पहाडोंकी कन्दरा (गुफा) में निश्चयकरके है। जब वह बली बुद्धिमान् महाशय बहुतसा सामान लेकर खोजनेको अहंकारसे चले और चलते २ हलाकान होते २ किसी तरह बर्फोंके पहाडके पास पहुँचे तब अगणित बर्फोंकी सफेदी देखकर उनके हाथ पांव ठंढे होगये, पुनः किसी तरह साहस (हिम्मत) करके ऊपर चले वहां भी पुरुषार्थ कर बर्फ काटना कटाना प्रारम्भ किया, इस क्रमसे बहुत दिनोंमें पहले शिखर पर किसी प्रकार पहुँचे; वहां देखतेहैं तो उससे ऊँचे २ शिखर भयानक चमकीले दिखाई देने लगे, तब तो वह पछताने लगे कि हा ! मैंने विना समझे बूझे प्राण खोये। पुनः मरनेका संकल्प करके ऊपर चढे किसी प्रकार शरीरकी हड्डी लिये (बहुत दुर्बल हो) दूसरे शिखर पर पहुँचे तो वहां पानीकी वर्षा होरहीहै, बडे वेग (जोर शोर) से वायु चलरहीहै, बिजलियोंकी चमचमाहट चारों तरफ दिखाई देती है, कहीं २ पहाडोंके ऊपर नीचे बडी २ ज्वाला देखपडतीहैं, यह चरित्र देख घबडागये मानो प्राण ही निकला चाहते हैं। पुनः हिम्मत कर बुद्धिमानीसे विचार करने लगे, वह कंदरा जिसके लिये आये थे किसी तरह मालूम ही नहीं होती; मार्ग भी इन उपाधियोंसे

---

१ यजु. अ. ३२ "न तस्य प्रतिमा आस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मामाहिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥" जिसके नामका बहुत यश है उस परमेश्वरकी उपमा नहीं है॥

देखनेमें नहीं आता, न जाने कहां है और अब हमारा उत्साह भी किसी तरह आगे चलनेका नहीं होता, पुनः पछताने लगे हा ! हम जानमालसे गये, हमारा घमंड हमको खागया, अबतो लौटना ही अच्छा है यदि जीतेहुए किसी तरह घरमें पहुँच जायँगे तो सब लोगोंसे यही कहेंगे कि न कोई कंदरा है न कोई चमकीली सूक्ष्म वस्तु है, हलाकानी २ है हां अलबत्ता अग्निकी ज्वालायें बहुतसी देखनेमें आई हैं परंतु मैं हलाकानी उठाते २ बेदम होगयाहूं, अब थोडे ही दिनोंमें मरजाऊंगा। अब गौर कीजिये कि, कष्ट उठाते २ शरीरका अंत होगया और उस निश्चय गुफाका पता न लगा पश्चात् यही कहना पडा कि नहीं है और भी छिद्रों (सुराख) से सूर्यकी किरणमें जो रज (कणिका) उडते दिखाई देतेहैं और वह इतने हलके हैं कि पकडनेमें नहीं आ सकते किन्तु दिखाई देतेहैं, इस रजका साठवां भाग परमाणु होता है, परंतु वह किसी तरह दिखाई नहीं देता, जब कि रजके साठ भाग हो सकतेहैं तब तो प्रमाण दिया, इससे परमाणुका सूक्ष्म रूप साबित हुआ ऐसे " अणोरणीयान् " परमाणुसे भी अत्यंत छोटा है तो क्या न दिखाई देनेसे स्वरूपकी हानि हुई, ऐसे शेष, शारदा, वेदादि सब कोई रात्रि दिन उस पर ब्रह्म सच्चिदानंदकी स्तुति करते २ शिथिल होजाने पर अर्थात् सूक्ष्मता देखते २ थकजाने पर यह कहना पडा कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" अभिप्राय यह है कि वह इतना सूक्ष्म है कि जिसकी प्रतिमा(उपमा) अथवा मूर्ति हम नहीं कह सकते हैं। इसका यह मतलब है और यह नहीं है कि उसकी मूर्ति ही नहीं है। " ब्रह्मणो वा द्वे रूपे मूर्त्तञ्चामूर्तञ्च " अभिप्राय यही है कि, पता न लगनेसे मूर्ति नहीं है और यों मूर्ति है, और देखिये केनोपनिषद्में कहा है जब देवासुर संग्राम (लडाई) हुआ उसमें देवताओंकी जय हुई कुछ काल व्यतीत होने पर एक समय हिमालयके शिखरपर अग्नि, वायु, इन्द्रादि सब देवता इकट्ठे होकर आपसमें अज्ञान वश हो कहने लगे कि आसुरोंको हमने जीता। ऐसा अभिमान देखकर परमात्मशक्ति प्रतिपादन करनेके वास्ते वह परमात्मा प्रकट हुआ क्योंकि वह " सर्वस्य द्रष्टा " सबका देखनेवाला है॥

१ जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। तस्य षष्ठितमो भागः परमाणुः स उच्यते॥ श्रीभागवते–चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा। परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः॥

श्रुतिः-तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति।

सो इन देवताओंको जानता हुआ उन देवताओंके निमित्त प्रकट होताहुआ पर उसको देवता न जानतेभये कि कौन यह पूजनीय है।

इस श्रुतिसे निश्चय होताहै कि वह परब्रह्म स्वरूपवान् अर्थात् शिर मुख आदि अंगवाला था तब तो दिखाई दिया। यदि निराकार होता तो कैसे भाषण करता? क्योंकि, इस ब्रह्मके परीक्षार्थ अग्नि, वायु गये थे। इनसे तृणद्वारा उस परब्रह्मसे वार्तालाप (बातचीत) हुआ अन्तमें इन्द्रके आते ही तिरोधान (गुप्त—न दिखाईदिये) हुआ अनन्तर इन्द्र अभिमान रहित हो स्तुति करनेलगे, तब भक्ति देख परमात्माने अपनी ब्रह्मविद्यारूपसे प्रकट हो उसका समाधान किया। यह केनोपनिषद्में है देखिये। और भी नारायणउपनिषद्में है—हृदयमें अधोमुख कमल है उसमें परमात्माका वास है इसकी व्याख्या बहुतसी कहकर अन्तमें यह कहा कि—

हृदयमें परमात्माका वास।

नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा।
तस्याः शिखाया मध्ये हि परमात्मा व्यवस्थितः॥

नीवार (तीना, फसई एकतरहका धान) के शिरा (ढूंड) की तरह पीत (पीला) वर्ण परमाणुसदृश ज्वाला है उसकी ज्वालामें परमात्मा रहता है, वही ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि है। **श्रुतिः**--

स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥

वही परमात्मा ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, अक्षर और परम स्वराट् है। देखिये सूक्ष्मतासे भी मूर्तिका प्रतिपादन हुआ, चाहे वह जैसी हो। कठोपनिषदि—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।

अंगुष्ठप्रमाण पुरुष अन्तरात्मा सर्वदा प्राणियोंके हृदयमें रहता है ॥

सामवेद २६ ब्राह्मण ९ प्रपाठक १० खण्ड–

यदा देवतायतनानि कम्पन्ते,दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खिद्यन्ति उन्मीलन्ति निमीलन्ति तदा इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्यपाꣳसुरे० ।

जिस राजाकी राज्यमें अथवा कहीं भी जिस कालमें देवमंदिर कांपते हुए मालूम हों (जाग्रतमें या स्वप्नमें) और देवप्रतिमा हँसती हुई, रोती हुई, नाचती हुई, टूटी हुई, उदासीन हुई और अकस्मात् नेत्रोंको फेरती हुई मालूम हो तब वह राजा (यजमान) अपने ऊपर अरिष्ट जानकर उस अरिष्ट शांतिके लिये "इदं विष्णु० " इत्यादिमन्त्र अथवा नामकरिके चरुपाक (होमद्रव्य) से हवन करे और भी मन्त्र कहा है । इससे देवकी मूर्ति और मंदिर साबित हुआ ।

यजुः०–नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥

हे रुद्र ! आपके मन्यवे अर्थात् क्रोधको नमस्कार है आपके हाथमें जो बाण है उसको नमस्कार है आपकी भुजाओंको नमस्कार है । प्रत्यक्ष मूर्तिमान् सिद्ध हुआ । और भी यजुः अध्याय ८ ।

संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ।

हम बडे धनी हों इस इच्छासे सुन्दर मूर्तिके बनानेकी सामग्री (औजार) युक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर चित्त लगाके सब अङ्ग (शिर, हाथ, पांव आदि) सहित परमात्माकी मूर्ति सुवर्णादि (सोना या अन्य धातुकी) की बनावे

अथवा दीवालमें रङ्गसे बनावे यदि बनानेमें कुछ भूल हुई हो तो उसको सुधारे।

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्धि हरसा माभिऽसंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ यजु० अ० १३ ।

परमेश्वरकी जो सोना आदिसे बनीहुई प्रतिमा उसको पहिले अग्निमें तपाके निर्मल करे पश्चात् दूधसे स्नान करावे और कभी इस प्रतिमा अर्थात् मूर्तिका अपमान न करे । अर्थात् भावनासे सदा पूजन करता रहे. क्योंकि वह मूर्ति जो संस्कारसहित शोधन और स्थापन (बैठाना) कीगई है वह मूर्ति यजमानको धनादि सम्पत्ति सहित सौ वर्ष जिलाती है ॥ इन मन्त्रोंसे धातुकी भी मूर्ति संस्कारसहित सिद्ध हुई ।

एह्यश्मानमातिष्ठाऽश्मा भवतु ते तनुः कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥ अथर्व० कांड२ ।

हे परमेश्वर ! आप आगमन कीजिये और इस अश्मानम् अर्थात् पाषाणकी मूर्त्तिमें निवास कीजिये, यह पत्थरकी मूर्त्ति आपका शरीर हो और सब देवता आपकी इस पत्थरसे बनी हुई मूर्त्तिमें निवासके लिये प्रार्थना करके अनन्त वर्ष तक स्थित करावे । इस आवाहनके मन्त्रसे पाषाणकी भी मूर्त्ति प्रतिपादित होती है, अभिप्राय यह है कि, यदि मूर्त्तिपूजनका प्रमाण न होता और उसमें परब्रह्मस्वरूप शिव, विष्णु आदिका प्रभुत्व न व्यापता, तो आराधकोंके मनोरथ सिद्ध नहीं होते, ध्यानमें मूर्तिके प्रभावसे उस सच्चिदानन्दके अपरम्पार महिमाका अनुभव न होता तो क्यों मूर्त्तियोंके स्थापन पूजन इत्यादिका क्रम प्रचलित किया जाता । कारण कि परब्रह्म तो तपहीसे प्राप्त होता है वह तपका मुख्य अंग मूर्त्तिपूजनादि है, जैसा सृष्टिके आदिमें देवताओंके उत्पन्न होने पर देवताओंको तप करनेका क्रम अविनाशी श्रीसदाशिवजी महाराजने कहाहै ।

पाद्मे--

कायेन मनसा वाचा ध्यानपूजाजपादिभिः ।
कामक्रोधादिरहितं तपः कुर्वन्तु भो सुराः ॥

हे देवताओ ! शरीरको कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रतसे दुबली (कृश) करके, मनकी चंचलताको त्याग करके अर्थात् एकाग्र चित्तसे, मुखद्वारा स्तुति (पाठ) करके परब्रह्म स्वरूप शिवशक्ति आदिकी मूर्त्तिका ध्यान हृदयमें धारण करके, स्नान, चंदन, अक्षत, पुष्प इत्यादिसे पूजन करके, इष्टदैवतके मन्त्रको जप करके अथवा सामगायनादिसे, काम[1], क्रोध, लोभ, मोह और मात्सर्य आदि विकारोंसे रहित होके तपको करो ॥

देखिये सगुण उपासनासे बहुत लोगोंने लाभ उठाया है। अगस्त्य, वामदेव, सनकादि, वशिष्ठ, व्यासादि ऋषि, ध्रुव, सगर, दिलीपादि राजा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपादि दैत्य और रावण, बाणासुरादि राक्षसोंने तपश्चर्याके प्रतापसे अपना अभीष्ट सिद्ध किया अर्थात् मूर्त्तिमानहीका ध्यान किया और उसी मूर्त्तिमान इष्टने प्रत्यक्ष (प्रकट) होकर वरप्रदान दिया यह बात पुराणोंसे विदित है । उपरान्त जिस जिसने तपश्चर्या की वह मूर्त्तिमान्हीकी की और मूर्त्तिमानही परमात्माने प्रकट हो उनका अभीष्ट सिद्ध किया और थोडाही कालका अर्सा हुआ कि श्रीमत्परमपूज्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य और वल्लभाचार्य इत्यादि सत्पुरुष होगये जिनका मत अभीतक चला जाता है । इससे चित्तको समाधान कीजिये मन्दबुद्धिको कूडे कर्कटकी तरह बाहर फेंकिये, यह सगुण उपासना ही कल्पवृक्ष है इसका सेवन

---

१ मोह सकल व्याधिनकर मूला । जाते पुनि उपजहि बहु शूला । काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा । प्रीति करैं जो तीनिहु भाई । उपजै सन्निपात दुःखदाई । " अ० "कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः। ज्ञानशस्त्रप्रहारेण तस्माज्जाग्रत जाग्रत । " महाभारते–शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परासुता । ईर्षा मानो विचिकित्सा च कृपासूया जुगुप्सिता । द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः ॥"

करना चाहिये और वह परमात्मा सर्वव्यापक है "यः सर्वज्ञस्स सर्ववित्" सबका जाननेवाला सबमें है। वही सगुण निर्गुणरूप वही निराकार निर्विकार और साकार है। श्रुतिः--

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।

जो परमेश्वर एक सबको वशमें करनेवाला सब प्राणियोंका आत्मा वह भक्तोंके अर्थ एक रूपको बहुत प्रकारसे धारण करताहै। देखिये प्रत्यक्ष श्रुति कह रहीहै फिर कर्म उपासनाका क्यों त्याग करना ? कर्म उपासनासे ही जन्म जन्मान्तरके कल्मष नष्ट होतेहैं और शरीरका कर्म तो छूटता ही नहीं जैसा--

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

पुनः सत्कर्म जो सुबुद्धिको उत्पन्न करनेवाला चित्तशुद्ध रखनेवाला उसको क्यों छोडना ?

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

राजा जनकादि कर्मसे ही सिद्धिको प्राप्त होगये कि जिनके पास ऋषिलोग भी उपदेश लेनेको जाते थे।

विना कर्म किये अंतःकरणकी मलिन जाती नहीं और जहांतक अंतः-करण शुद्ध नहीं होगा तहांतक शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी, विना ज्ञानके मोक्ष हो नहीं सकता।

मोक्षका स्वरूप।

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥

---

१ योगवाशिष्ठे-" न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले। सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीर्यते ॥ " शिवगीतायां-"यस्तु शान्त्यादियुक्तः सन्मामात्मत्वेन पश्यति। स जायते परं ज्योतिरद्वैतं ब्रह्म केवलम् ॥ आत्मस्वरूपावस्थानं मुक्तिरित्यभिधीयते " न्यायसूत्रे-"दुःख-जन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।" निरालंबोपनि०-नित्याऽनित्यविचारादनित्यसंसारसुखदुःखविषयसमस्तक्षेत्रममताबन्धक्षयो मोक्षः ॥ "

मोक्ष कोई कैलास वैकुण्ठकी तरह लोक नहीं है केवल हृदयकी अज्ञानता-रूप गांठका छूटजानाही मोक्ष कहाताहै। इसलिये जो कर्म ज्ञानको प्राप्त कर-देनेवाला है उस कर्मका परित्याग न करना चाहिये। क्योंकि कर्म और ज्ञान इनका परस्पर सम्बन्ध है। जैसा योगवासिष्ठे–

कर्म और ज्ञानसे मुक्ति।

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते शाश्वती गतिः॥

जैसे पक्षी आकाशमें दोनों पंखोंसे उडतेहैं इसी प्रकार ज्ञान और कर्मसे मुक्ति होतीहै। कर्म, उपासना, ज्ञान इनका बोध वेदहीसे होताहै वेदही कर्म करनेका उपदेश करताहै क्योंकि मूलरूप कर्मके पुष्ट हुए विना ज्ञानरूप फल कहांसे प्राप्त होगा। इससे ब्रह्महीसे उत्पन्न हुआ कर्म जानना चाहिये "कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि" यह कर्मरूपवृक्षको सींचनाही सुंदर पुष्ट ज्ञानरूप फलका लाभदायक होगा इससे कर्मसे अंतःकरण शुद्ध करै और उपासनासे चित्तको एकाग्र करे। यथा–

सगुणोपासनाभिस्तु चित्तैकाग्र्यं विधाय च।

जहां तक चित्त शुद्ध न होगा तहांतक ज्ञानकी दृढप्राप्ति दुर्लभ है इस लिये वादविवादको छोड निदिध्यास करना चाहिये, विना निदिध्यासके चाहे शास्त्र अवलोकन करते २ वादविवाद करते २ आयुष्य पूरी होजावे परन्तु आनन्दानुभव प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। जैसा–

भावाभावात्मकं तद्वत्कार्यकारणरूपधृक्।
नात्मेति बोधयेच्छास्त्रमात्मानं बुद्ध्यते स्वयम्॥

जैसे इच्छा, इच्छाका स्वरूप और इच्छाशक्ति अलग नहीं होती इसी तरह सर्वव्यापी आत्माका ज्ञान आत्मासे भिन्न नहीं होता अर्थात् आत्माका ज्ञान

---

१ योगवासिष्ठे–" न शास्त्रैर्नापि गुरुणा दृश्यते परमेश्वरः। दृश्यते स्वात्मनैवात्मा स्वया सत्त्वस्थया धिया॥" पिंगलोपनिषदि–विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रो जीवितं वापि चञ्चलम्। विहाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदुपास्यताम्॥

शास्त्रादिके द्वाराही नहीं होता आत्माका ज्ञान आत्माहीसे आत्माहीको होता है।

कठोपनिषद्दि।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यह आत्मा बहुत शास्त्रके पढनेसे प्राप्त नहीं होता, न स्मरण (याद) रखनेसे और न बहुत सुननेसे प्राप्त होता है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुꣳस्वाम्।

जिसके ऊपर यह आत्मा दया करता है अर्थात् जो कोई काम क्रोध लोभ आदिसे रहित, मानाऽपमानको छोड नम्रतापूर्वक शांत भावसे उपासना अर्थात् भक्तिसे श्रवण मनन निदिध्यासन करताहै उसको यह आत्मा अपने शरीरको दिखाताहै अर्थात् प्राप्त होताहै। और इसी आत्माको अनेकों प्रकारसे आराधना करते हैं। जैसा–

मनुः–एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

कोई यज्ञ करनेवाले अग्निभावसे उपासना करते, कोई मनुआदिके नामरूपसे उपासना करते, कोई इन्द्रादिदेवताओंके नामसे उपासना करते, कोई प्राणवायु रूपसे उपासना करते और कोई सनातन ब्रह्म कहकर उपासना करते हैं। श्रुतिः–" एकं सत्पुरुषा बहुधा वदन्ति " एकही परब्रह्मको उत्तम पुरुष (विद्वान्, तप करनेवाले) बहुत प्रकारसे कहतेहैं। देखिये इसी विश्वव्यापी आत्माको अनेकों प्रकारसे यजन करते हैं और वह परमात्मा जिस २ भावसे साधक देखनेकी इच्छा करताहै उसी २ प्रकारसे दिखाई देताहै क्योंकि उसमें अनन्त शक्ति हैं। अनन्त उसका नाम है, उसका पता साधक जन्मजन्मांतर तप करते २ शिथिल होजायगा परंतु क्या यह निश्चय होगा कि परमात्मा

---

१ "शम्भु विरंच विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंशते नाना॥"

ऐसा है अर्थात् लंबा, चौडा, रूप, वर्ण, छोटा बडा आदि अमुकप्रकारका है " नहीं नहीं " साधक आनंदानुभव ग्रहण करते २ देखते २ प्रफुल्लित (गद्गद, मस्त) होकर अवाक् अगोचर इत्यादि परमानंद अवस्थाको प्राप्त हो लिंगशरीर[1] जो कि मुक्ति न होने तक इस अज्ञानसे भ्रमित जीवका संग नहीं छोडती उसको त्यागकर अपने आनंदके समूहमें मिलजाताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै। कहा भी है-

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

बहुतों जन्मोंकी तपश्चर्याके प्रभावसे मुक्ति होतीहै। पुनः वह इस मोहमयके प्रपंचको नहीं देखता।

सांख्ये-न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिः।

जिसको साधन चतुष्टयादिके प्रतापसे मुक्ति[2] होगईहै वह फिर इस संसारमें नहीं आता है परन्तु वह आनंदके समूहका लाभ जभी होगा जब इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर सद्गुरुकी सेवा शुद्धभावसे करके निदिध्यास करोगे। जैसा-

निर्मोहो निरहङ्कारः समः सङ्गविवर्जितः।
सदा शान्त्यादियुक्तः सन्नात्मन्यात्मानमीक्षते॥
यत्सदा ध्यानयोगेन तन्निदिध्यासनं स्मृतम्[3]॥

ममता और अहङ्काररहित, सब प्राणियोंमें समान दृष्टि, एकांतमें रहना, शांतस्वभाव क्रोधादिको त्यागकर निरन्तर ध्यानयोगसे आत्माको आत्माहीसे ध्यान करनेको निदिध्यासन कहतेहैं। इस प्रकार अभ्यास चिरकाल तक करनेसे जन्मजन्मांतरकी वासनाका नाश होताहै तब वह प्राणी मुक्त होताहै।

---

१ " पञ्चप्राणा दशेन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेति सप्तदशकं सूक्ष्मशरीरम्।" २ श्रीमद्भागवते—सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः। नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव॥"

३ पंचदश्यां-" तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्। एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः॥ " कपिलगीतायाम्-" आरंभं श्रवणं कृत्वा मनसा च विचारणम्। निदिध्यासनमभ्यासैः साक्षात्कारस्तदा भवेत्॥"

[1]वासनानेककालीना दीर्घकालं निरन्तरम् ।
सादरं चाभ्यस्यमाने सर्वथैव निवर्तते ॥

अनेककालकी जो वासना है वह बहुत समय तक निरंतर आदरपूर्वक ब्रह्मके अभ्यास करनेसे सब जाती रहतीहै ॥

हे भाइयो ! अवश्य अभ्यासकरना चाहिये क्योंकि यह मनुष्यका शरीर बडे पुण्यसे प्राप्त होताहै ।

सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥

यह मनुष्यका[2] शरीर मोक्षपद पानेका सीढी है और बहुत कठिनतासे मिलताहै ऐसे शरीरको प्राप्त होकर जो अपने आत्माको इस संसारसे उद्धार नहीं करता उससे अधिक और कौन पापी है ।

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥

इस संसारमें जीवोंके हजारों वा करोडों जन्मोंके बीतनेपर कभी दैवयोगसे अनेक जन्मके पुण्य इकट्ठे होनेसे मनुष्य होताहै इससे ऐसा समय पाकर जिसने मोक्षसाधन न किया उसका जन्म वृथा है। क्योंकि-श्रीमद्भागवते-

[3]स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ।

---

१ मुक्तिकोपनिषदि-जन्मान्तरशताभ्यस्तान्मिथ्या संसारवासना । सा चिराऽभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥" २ " बडे भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सदग्रंथन्हि गावा ॥ साधनधाम मोक्षकर द्वारा । पाइ न जो परलोक संवारा ॥ नरतन पाय विषय मन देहीं । पलटि सुधाते शठ विष लेहीं ॥

३ वाराहपुराणे-"देवा अपि तपः कृत्वा ध्यायन्ते च वदन्ति च। कदा नो भारते वर्षे जन्म स्याद्भूतधारिणि ॥ " गरुडपुराणे-" मानुष्यं सर्वभूतानां भुक्तिमुक्तिफलं शुभम् । अतिसुकृतिनं लोके न भूतं न भविष्यति । गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यान्तु ते भारतभूमिखंडे । स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवंति भूयः पुरुषाः पुरस्तात् ॥ भागवते-" लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् । आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ।"

साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधनम् ॥

जैसे नरकमें रहनेवाले पुरुष इस मनुष्यलोककी इच्छा करतेहैं इसी प्रकार स्वर्गके रहनेवाले देवता भी इस मनुष्यदेहमें जन्मकी अभिलाषा करते हैं क्योंकि वह मनुष्यलोक ज्ञानभक्तिद्वारा मोक्षका साधन होनेसे श्रेष्ठ है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमेंसे जिस मनुष्यने एकका भी साधन न किया उसका जन्म बकरीके गलेके स्तनसमान निरर्थक है। इसलिये कर्म, उपासना, ज्ञान इनका परस्पर संबंध अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञान ये आपसमें मिश्रित (मिले) हैं जैसे कर्म, उपासनासे ज्ञान उत्पन्न होताहै। पंचदश्याम्–"उपासनस्य सामर्थ्याद्विद्योत्पत्तिर्भवेत्ततः" उपासनाके बलसे ज्ञान होताहै। और उपासनामें कर्म और ज्ञान मिलेहैं क्योंकि विना कर्मके उपासना कैसे होगी? कारण, कर्म तो मूल है ज्ञान फलवत् है और फलमें बीज, बीजसे वृक्ष, वृक्षसे फल और उपासना मूलसे फलपर्यंत है--"निष्कामोपासना मुक्तिस्तापनीये समीरिता" निष्काम उपासना करनेवालेकी मुक्ति होती है। इससे उपासनाका जो शुद्धांश वही मुख्य ज्ञान है क्योंकि उपासनावाला तो अपने इष्टको सबमें देखताहै और सबको इष्टमें देखताहै तब यही श्रुति सिद्ध हुई कि–

ईशावास्ये।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

जिस कालमें जाननेवालेको प्राणिमात्रमें आत्मा ही है अर्थात् अपना इष्ट ही है ऐसे एकभावके देखनेवालेको क्या मोह और क्या शोक है। अब विचार कीजिये कि उपासनासे क्या हानि हुई केवल समझहीका अंतर है। कर्म उपासनासेही ज्ञान पुष्ट होताहै और वर्तमान कालमें शुद्ध ज्ञान होना दुर्लभ है, इसलिये पहिले कर्म ही पुष्ट करना चाहियें, कर्मसे अधोगति नहीं होती, यह भी निश्चय है। इसीसे कर्मका त्याग न करे क्योंकि कर्मसे भक्ति उत्पन्न होती

है जब भक्ति उत्पन्न हुई तब मनुष्यका दुष्टाचरण नष्ट होजाताहै, जब आचरण शुद्ध होगया तब ज्ञान स्वयं होताहै और ज्ञान वैराग्य ही मोक्षका रूप है, ऐसा समझकर कर्म उपासनाको दृढतासे धारण करना चाहिये इनका स्वाद कालान्तरमें आताहै जब स्वाद मालूम होने लगताहै तब उस समयमें उस प्राणीको शांतभाव प्राप्त होताहै राग द्वेष छूटने लगते हैं और चित्त आपसे आप ही एकाग्र होने लगताहै, ध्यानकी दृढता होतीहै और ध्यान ही परमानंदका स्थान है, इस ध्यानके अभ्याससें अनंत गुण हैं।

तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च।
ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात्प्रविमुच्यते ॥

इस मनुष्यशरीरकी रक्षा धर्मके अर्थ करना, धर्म आत्माके ज्ञानके लियं करना और आत्माका ज्ञान ध्यानयोगके लिये करना क्योंकि ध्यानयोगसे मोक्ष पानेमें विलंब नहीं होता। ध्यानके सदृश दूसरा कुछ नहीं--जैसा--

जातिमाश्रममङ्गानि देशकालमथापि वा।
आसनादीनि कर्माणि ध्यानं नापेक्षते क्वचित् ॥

जाति, आश्रमका अंग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इनके स्वधर्म और देश काल अर्थात् देश २ के धर्म जैसा जम्बूद्वीपका आचार उपासना भिन्न है और अन्य द्वीपोंका भिन्न २ है इत्यादि और पद्मासन सिद्धासनादि साधन यह कोई भी ध्यानयोगके समान नहीं है--यथा शिवगीतायां–

संसारान्मुच्यते जन्तुः शिवतादात्म्यभावनात् ।
तथा दानं तपो वेदाध्ययनं चान्यकर्म वा।

---

१ कैवल्योपनिषदि–" श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि।" श्रद्धासे भक्तिसे ध्यानयोगसे आत्माको जानो। " " भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी। खल कामादि निकट नाहिं जाहीं। बसै भक्ति जाके उर माहीं ॥" दे० भा०–" भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता। निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम् ॥ "

सहस्रांशं तु नार्हंति सर्वदा ध्यानकर्मणः ॥

श्रीशिवजीके तादात्म्यध्यानसे अर्थात् "शिवोहं" इस प्रकार अंतःकरणकी एक वृत्ति करनेसे यह प्राणी संसारके पार होजाताहै जिस प्रकार दान, तप, वेदपाठ अथवा दूसरे कर्म हैं यह ध्यान करनेके सहस्र भागके भी समान नहीं होसकतेहैं। इसीसे सब मंत्रप्रयोगोंमें ध्यान कहा है, ध्यान करनेसे मन्त्राधिपति देवताका साक्षात्कार होताहै (परन्तु अब लोगोंने ध्यानके श्लोकको पाठ करके फल मानलियाहै) यह ध्यान लक्ष्यरखनेसे सर्वदा होता रहता है। यथा पंचदश्याम्-

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि ।
तदेव स्वादयत्यन्तः परसङ्गरसायनम् ॥

जिस स्त्रीका चित्त दूसरे पुरुषमें लगरहा है वह घरके कामकाजमें लगीहुई भी परपुरुषके विहारका स्वाद मनमें लेती रहतीहै इसी तरह परमात्माका ध्यान चित्तलगानेसे हो सकता है परंतु चित्तको प्रथम हठ करके लगाना चाहिये, क्योंकि यह चित्त विषयोंमें आसक्त (लिप्त) होनेसे कादर साहस रहित भ्रमित हो रहाहै जब इसको क्रम २से हठात् ध्यानमें लगाया जायगा तब सावधानता प्राप्त होगी, पहिले तो डरताही है। यथा कपिलगीतायाम्-

स्त्रीणामादौ यथा भीतिः पुरुषस्यादिसङ्गमे ।
तथाऽऽसां चित्तविक्षेपः प्राप्तानां स्वामिमंदिरम् ।

---

१ ब्रह्मोत्तरखण्डे-'तावन्मृत्युभयं घोरं तावज्जन्मजराभयम्। यावन्नो याति शरणं देही शिवपदाम्बुजम्। मनसा पिबतः पुंसः शिवध्यानरतामृतम्। भूयस्तृष्णा न जायेत संसार-विषयासवे। विमुक्तं सर्वसङ्गश्च मनो वैराग्ययंत्रितम्। यदा शिवपदे मग्नं तदा नास्ति पुनर्भवः॥' वाराहोपनिषदि-" शिवो गुरुश्शिवो वेदश्शिवो देवश्शिवः प्रभुः। शिवोऽस्म्यहं शिवस्सर्वं शिवादन्यन्न किंचन ॥" (देवीभागवते) " यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः। एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः॥" (दे० भा० विष्णुवचनं लक्ष्मीं प्रति) शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम। उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः। नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम् ॥" " जरत सकल सुरबृंद विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मतिमंदको कृपाल संकर सरिस ॥"

नूतन (नई, जवान) स्त्रियोंको पहिले पुरुषके संबंधमें, जैसा भय लगताहै ऐसे ही चित्तकी वृत्तिको[1] आत्मप्राप्तिके समयमें विक्षेप होताहै अर्थात् चित्तकी वृत्ति नहीं ठहरती जैसे स्वामीके मकानमें स्त्री नहीं ठहरा चाहती अर्थात् जहां-तक उसको विषयका आनन्द नहीं मालूम होता तहांतक उसको भय लगतीहै और जब स्वाद प्राप्त होगया तब पतिसे प्रीति करलेतीहै ऐसे ही चित्तका हाल है। इसलिये जो कोई थोडा काल भी महामन्त्रकी आराधना किया करेगा उसको अवश्य चित्तकी विश्रान्ति प्राप्त होगी, चित्तको विश्रान्ति प्राप्त करनेवाली षण्मुखी मुद्रा उपयोगी होती है।

षण्मुखीमुद्रासे आत्मदर्शन ।

श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रान्तके चान्याङ्गुलीर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥

दोनों अंगूठोंसे दोनों कानोंको, दोनों तर्जनियोंसे दोनों नेत्रोंको, दोनों मध्यमाओंसे दोनों नाकके छिद्रोंको, दोनों अनामिका कनिष्ठिकासे मुखके दोनों ओठोंको बंद करे।

निरुद्ध्य मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशम् ।
तदा तत्क्षणमात्मानं ज्योतीरूपं स पश्यति ॥

षण्मुखी मुद्रा लगाकर योगी वायुको रोककर वारंवार अभ्यास करे, तब आत्मा ज्योतिस्वरूप देखपडताहै ।

अकल्पितोद्भवं ज्योतिः स्वयंज्योतिः प्रकाशितम् ।
अकस्माद्दृश्यते ज्योतिस्तज्ज्योतिः परमात्मनि ॥

विना कल्पना किये जो ज्योति आपसे आप अकस्मात् दिखाईदे वह ज्योति परमात्माकी है।

तज्ज्योतिर्हृदयस्थाने प्रत्यक्षं ब्राह्ममक्षरम् ।
पद्मगर्भे च यः पश्येत्स मुक्तो नात्र संशयः ॥

---

१ मैत्र्युपनिषदि-"यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनावुपशाम्यति ॥
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति ॥"

हृदयमें जो कमल है उसके बीचमें जो ज्योति वह अविनाशी ब्रह्म है उसके ध्यान करनेसे प्राणी मुक्त होजाता है। इसमें संदेह नहीं।

यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः।
स वै ब्रह्मविलीनः स्यात्पापकर्मरतो यदि॥

जो मनुष्य सदा किसीको न दिखाकरके इस मुद्राका अभ्यास किया करता है वह निश्चय करके ब्रह्ममें लीन होजाता है वह पहिले चाहे पापकर्ममें लिप्त भी रहाहो इस मुद्राके अभ्याससे अवश्य चित्त मोहित होजाता है. क्योंकि नाना प्रकारके चित्र विचित्र ज्योतिःस्वरूपका दर्शन होता है, महान् प्रकाश जिससे परमात्माका अपार अकथनीय महिमाका अनुभव हो वह देखपडता है और तत्त्वोंका आकार अर्थात् पृथ्वीका चतुष्कोण पीतवर्ण, जलका अर्धचंद्राकार श्वेतवर्ण, अग्निका त्रिकोण रक्तवर्ण, वायुका नील हरितवर्ण वर्तुल (गोलाकार) और आकाशका चित्र विचित्र वर्ण दर्शित होता है। और इन्हीं पंचतत्त्वोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति और लय होती है। जैसा–आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वीका उत्पत्ति होती है। पुनः पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लय होता है और भी विशेष यह है कि यह पंचमहाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें, महतत्त्व मूलप्रकृति मायामें और माया सबके आधारभूत परमात्मामें लय होती है। यही परमात्मा (श्रुतिः)–"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" एक ही अद्वितीय ब्रह्म है। यही सबका द्रष्टा और प्रकाशक है, इन्हींके महान् तेजांशसे सब भयभीत हो अपने अपने कार्यमें तत्पर होरहे हैं। यथा श्रुतिः–

---

१ मैत्र्युपनिषदि–"हृत्पुंडरीकमध्ये तु भावयेत्परमेश्वरम्। साक्षिणं बुद्धिवृत्तस्य परमप्रेमगोचरम्।" शंखसंहितायाम्–"हृदिस्था देवताः सर्व्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। हृदि ज्योतींषि भूयश्च हृदि सर्व्वं प्रतिष्ठितम्॥" मुंडके श्रुतिः–"अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यस्स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ॐ मित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति यः पाराय तमसः परस्तात्॥" अर्थ–जैसे रथकी नाभि (पहियेके बीचका काष्ठ) में सीधे २ काष्ठ लगेहैं वैसे ही हृदयसे सब नाडियां फैली हुई हैं, उस हृदयमें बुद्धिकी वृत्तियोंका साक्षी आत्मा रहताहै उसको ॐकारसे जप ध्यान करो जिससे अज्ञानरूपी अंधकारसे निवृत्त हो।

[1]भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

भयसे वायु चलता है, भयसे सूर्य उदय होके सर्वत्र प्रकाश करते हैं और भयकरके ही अग्नि, इन्द्र और मृत्यु दौडते हैं अर्थात् अपने अपने कार्यको करते हैं । कहां तक इन सच्चिदानंदकी महिमा वर्णनकीजाय कर्ता धर्ता, निरंजन, निर्लेप, अलख, निराकार, निर्विकार, साकार, व्यापक, सगुण, निर्गुण सब आप ही हैं, बुधजनोंकी बुद्धिमें चक्कर डालकर आप ही भ्रमाते हैं अर्थात् नाना प्रकारके सत् असत्के विषयोंका प्रसंग उठाकर किसीको आस्तिक, किसीको नास्तिक बनना पडता है । अपनी २ बुद्धिको ही सिद्धान्त मानकर राग द्वेषसे सुखदुःखके भोक्ता होते हैं, यह गुप्ती खेल (तमाशा) महामायाके द्वारा आप ही करते हैं और निर्विकार पुकारे जाते है. भला कहिये कौन समझ सकता है, महामाया आपहीमें आश्रित रहती है और आपहीकी शक्तिसे अवटित घटनाको करती है " अघटितघटनापटीयसी " अर्थात् जो न होने योग्य है उसका अनुभव करती है, इन्हीं महाराणीको महामाया, योगमाया, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, नित्यादि नामों करके कहते हैं ।

शयाने पुरुषे निद्रा स्वप्नं बहुविधं सृजेत् ।
ब्रह्मण्येवं निर्विकारे विकारान्कल्पयत्यसौ ॥

जैसे सोते हुए पुरुषको निद्रा अनेक प्रकारके स्वप्नोंकी रचना करती है इसी तरह विकाररहित ब्रह्ममें स्थित यह माया भी बहुत प्रकारके विकारोंको कल्पना करती है । यह प्रकृति पुरुषका विलगपना नहीं है यथा-"यथाग्नौ

---

१ "मद्भयाद्वाति वातोयं सूर्यस्तपाति मद्भयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरातिमद्भयात् ॥" श्रुतिः-न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमाग्निः । तमेव भांतमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति-अर्थ-उस ब्रह्मको सूर्य प्रकाश नहीं कर सकते, चन्द्रतारा बिजुली वा अग्नि भी नहीं प्रकाशते विशेष क्या यह संपूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासे ही प्रकाशित होताहै उससे ही यह सब प्रकाशित है ।

दाहिका शक्तिः पद्मे शोभा प्रभा रवौ। शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि ॥ अर्थ—जैसे अग्निमें जलानेकी शक्ति, कमलके फूलमें शोभा और सूर्यमें प्रभाशक्तिहै इसी तरह परमात्मामें प्रकृति सर्वकाल स्वाभाविक रहतीहै अर्थात् भिन्न नहीं परन्तु महामायाका प्रसार (फैलाव—विस्तार) इतना प्रचंड और बडा है कि, जिसका महर्षियोंने सहस्रों वर्ष उग्र तप करके अर्थात् अन्न, जल रहित एकचित्त होके भी भेद नहीं पाया, अभिप्राय यह है कि सब देव मुनि आदि तप करनेवालोंको भी काम क्रोध मोहादिके चक्रमें डालकर बहुत काल पर्यंत भ्रमादिया है " नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी " (अबके जीवोंको कौन कहे जो रात दिन कामक्रोधके कीडे होरहे हैं) जो कोई शुद्ध, सत्त्व, नम्रबुद्धिसे उस भक्तवत्सल परमात्माकी आराधना महामन्त्रसे कालांतरपर्यंत दृढतासे करताहै उस पुरुषको अविनाशी आनंदघनकी कृपासे यह मायाब्रह्मका विवरण मालूम होके अपने आप स्वयंरूपको प्राप्त होताहै । परन्तु इन चरित्रोंका जाननेवाला योगी है जो कालको जीतताहै। हरएककी सामर्थ्य नहीं है (पर वह योगी नहीं जो अमीरोंको ईश्वर समझकर दिखाते फिरतेहैं)

खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते ।

योगी कालदंडको जीतकर त्रैलोक्यमें सुखपूर्वक विचरतेहैं क्यों आत्माका जन्म मरण तो है नहीं केवल पंचभूतोंका ही उत्पत्ति लय है क्योंकि इनकी उत्पत्ति और लयमें सृष्टिकी भी उत्पत्ति लय होतीहै । योगी इन सब भेदोंको अच्छी तरह जानताहै इसीसे योगी श्रेष्ठ है और इसी षण्मुखी मुद्राके अभ्याससे दशविध नाद सुनाई देने लगताहै जिस नादको सुनकर मन अवश्य लयको प्राप्त होता है यह नादका अनुसंधान (सुनना) मनके लय करनेका अत्यन्त सुगम उपाय है (इसको योगप्रकरणमें लिखूँगा) और भी मनके

---

१ ब्रह्मवैवर्तपु०—" कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् । जायते योगवान्यत्र दत्तमक्षय्यतां व्रजेत् । दृष्टः संभाषितः स्पृष्टः पुंप्रकृत्योर्विवेकवान् । भवकोटिशतायातं पुनाति वृजिनं नृणाम्।" ब्रह्माण्डपु०—" गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च । ब्रह्मचारिसहस्रेण योगाभ्यासी विशिष्यते । " योगशिखोपनिषदि—योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम् । योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ॥"

शुद्ध करनेका उपाय सात्त्विक आहार है जैसा शुद्ध अन्न भोजन किया जावेगा तदनुसार ही मनकी वृत्ति होगी इससे कट्वम्लादि पदार्थका सेवन निषिद्ध है। छान्दोग्योपनिषद्में-

अन्नसे मनकी उत्पत्ति।

अन्नमशितं[1] त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातुस्तत् पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा्ंसंयोऽणिष्ठस्तन्मनः।

भोजन किये हुए अन्नका तीन प्रकार विभाग होताहै प्रथम जो उसका स्थूल भाग है वह विष्ठा (मल) होताहै दूसरा मध्यम भाग मांस होताहै और तीसरा जो सूक्ष्म भाग है वह मन होताहै॥

इसीसे पूर्वमें ऋषिलोग कन्द मूलादि भोजन करतेथे कि, जिससे मनमें विकार न उत्पन्न हो, इसी वास्ते अनुष्ठानोंमें हविष्यान्न भोजन कहा है कि जिससे अनुष्ठानमें चित्त स्थिर रहे। परन्तु अब तो चटनी, अचार, मिर्चा, तैलादिके पदार्थ भोजनमें न मिलैं तो चित्त प्रसन्न ही नहीं होता और ये पदार्थ रोग, काम, क्रोधके उत्पन्न करनेवाले हैं परन्तु येही प्रिय होरहेहैं भला कहिये ऐसे जिह्वास्वादवालोंका चित्त कैसे स्थिर होसकताहै ? कदापि नहीं।

शुद्ध अन्नके भोजन, अरण्य (वन जंगल) में शान्त्यादियुक्तसे तप करनेसे अमरपद (मोक्ष) प्राप्त होताहै॥

मुण्डके-

तपः श्रद्धे ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः। सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

---

१ पाद्मे-" अन्नं पुंसाशितं त्रेधा जायते जठराग्निना। मलः स्थविष्ठो भागः स्यान्मध्यमो मांसतां व्रजत्॥ मनः कनिष्ठो भागः स्यात्तस्मादन्नमयं मनः॥" २ देवीभागवते० "आहारशुद्धया नृपते चित्तशुद्धिश्च जायते। शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम॥"

जो शान्त विद्वान भिक्षाके अन्नको भोजन करते हुए जंगलमें श्रद्धा सहित तपको करतेहैं वह सूर्यद्वार (उत्तरायणरूप द्वार) से विरज हुए अर्थात् पुण्य-पापरूप कर्मसे रहित होके जातेहैं जहां पर अमृतरूपसे अविनाशी स्वभाववाला पुरुष स्थित है ।

परंतु वर्तमानकालमें अरण्यका तप, भिक्षाका भोजन यह हमारे महाशयोंसे कब होसकताहै अर्थात् दुर्लभ है और तपसे ही ब्रह्म जाना जाता है इसकी व्याख्या पूर्वहीसे लिखता आताहूं श्रुतिः—" तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति " तप करके ब्रह्मको जान । परंतु यदि ब्राह्मणादि भाई स्वधर्मरूपी तपको भी स्वीकार करें तो भी श्रेयस्कर है " स्वधर्मानुष्ठानमेव तपः" अपने २ धर्मका प्रतिपालन करना यह परम तप है, इसीको सनातन धर्म कहतेहैं, जैसा द्विजोंको ब्रह्मकर्म अर्थात् सन्ध्या गायत्रीका जप, देवताकी पूजा, वेदाध्ययन, वैश्वदेव, अतिथिपूजन इत्यादि कर्म उपासना श्रद्धासे निष्काम करना यही तप है, यही ब्रह्मकर्म ब्रह्मको प्राप्त करदेनेवाला है, इससे स्वधर्मका परित्याग कभी भी न करना चाहिये "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" अपने धर्ममें स्थित रहनेसे दुःख आपत्ति आनेसे भी चित्तमें घबडाहट नहीं प्राप्त होती, धैर्यता बनी रहती है, धर्मका त्याग भी कभी नहीं हो सकता परंतु जो महाशय स्वधर्ममें दृढतासे आरूढ रहेंगे उन्हीको आनंद प्राप्त होगा और स्वधर्मके त्यागदेनेमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न हो दुःखही दुःख मिलतेहैं । एतदर्थ स्वधर्मका पालन, परोपकार, सत्पुरुषका सत्सङ्ग और शास्त्रका अवलोकन, सत्यभाषण, दुराचारियोंको संग और

---

१ श्रीमद्भागवते—" भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै । अज्ञानहेतुकृतमोहमहांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ " —अन्यच्च—" लघुर्जनः सज्जनसंगसंगात् करोति दुस्साध्यमपि सुसाध्यम् । पुष्पाश्रयाच्छम्भुशिरोधिरूढा पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ॥" " सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।" " बडे भाग पाइय सतसंगा । विनहिं प्रयास होय भवभंगा ॥"

२ देवीभागवते—"सत्येनाऽर्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी । सत्ये चोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ॥ "

द्वेषका त्याग और उद्योगमें तत्पर रहना इत्यादि वाक्योंको सर्वदा धारण करना चाहिये ।

आठ प्रहर (२४घंटा) के मध्यमें जिस समय सावकाश मिले उस समय उक्त लिखे हुए क्रमसे महामंत्र ओंकारका शुद्धरीति तथा सावधानतासे उच्चारण करताहुआ नित्य जो ध्यान किया करेगा वह अवश्य ही सब पापोंसे निवृत्त होके अन्तमें मोक्षका लाभ उठावेगा, क्योंकि नित्यप्रति अभ्यास करनेसे महामन्त्रमें प्रीति हो जायगी जब प्रीति होगई तो अवश्य ही अन्तमें उच्चारण होगा और जिससे इस महामन्त्रका देहान्तके समयमें उच्चारण होजावे तो उसको मोक्ष होना क्या दुर्लभ है । यह श्रुतिः ईशावास्ये–

ॐक्रतो स्मर कृतꣳस्मर ॐ क्रतो स्मर कृतꣳस्मर।

जो पुरुष सावधान चित्त करके देहान्त पर्यंत प्रणव की उपासना करताहै वह पुरुष शरीर त्यागनेके समय अपने मनसे कहताहै कि हे " क्रतः" संकल्प विकल्पके कर्ता मन ॐ कारको स्मरण करो अर्थात् जिस कालके साधनेके अर्थ समग्र आयुष्य प्रणवकी उपासना किया है वह काल अब उपस्थित(तैय्यार) है इससे ओंकारको स्मरण करो कि जिसके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें ब्रह्मद्वारा प्रणवका उपदेश पाय अमृतत्त्वको प्राप्त होवोगे इसलिये हे मन! अब इस कालमें अपने कल्याणार्थ ओंकारको स्मरण करो । प्रश्नोपनिषदि श्रुतिः ॥

स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥

---

१ श्रुतिः–" पर्य्येण म्रियन्ते द्विषन्तः ॥ " द्वेष करनेवाले सब तरफसे मरते हैं ।

२ गीतायां–ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।" पाद्मे–"यावज्जीवं जपेन्मन्त्रं प्रणवं ब्रह्मणो वपुः। ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घ शांतिप्रदायकः ॥ प्लुतस्तु सर्व्वसिद्धिः स्यात्प्रणवस्त्रिविधः स्मृतः॥" सूतसंहितायाम् "ओंकारः सर्व्वमंत्राणामुत्तमः परिकीर्त्तितः । ओंकारेण प्लवेनैव संसाराब्धिं तरिष्यति ॥" शिवपुराणे–"प्रणवः सर्ववेदादिः प्रणवः शिववाचकः । शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः । तस्मादेकाक्षरं देवं शिवं परमकारणम् ।"

इस उपनिषद्में सत्यकामानामक ऋषिने अपने आचार्य पिप्पलाद ऋषिसे प्रश्न किया है कि, हे भगवन् ! मनुष्योंमें जो कोई मरणपर्यंत सम्यक् प्रकारसे प्रणवकी उपासना करताहै वह कौनसे लोकको प्राप्त होताहै ?

तस्मै स होवाच-एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति।

पिप्पलाद ऋषि कहतेहैं कि हे सत्यकाम ! यह जो परब्रह्म और अपरब्रह्म है वह ॐकार ही है अर्थात् जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामोंकरके परब्रह्म है और सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ जो प्राण (सूत्रात्मा) नाम करके अपरब्रह्म है वह दोनों प्रकारका ॐकार ही है इससे इस प्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ध्यानसे ही दोनोंमेंसे एकको पाता है।

ओंकारका ब्रह्मत्व।

ओमिति ब्रह्म। ॐकारएवेदं सर्वम् ॥

ॐ यह ब्रह्म है। ॐ कारही यह सर्व है। गौडपादीयकारिका-

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥

ॐ कार निर्भयरूप ब्रह्म है, ॐकारमें चित्त लगाना, प्रणवमें नित्य चित्त लगानेवालेको भय कहीं नहीं होता।

प्रणवं ह्रीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति ॥

सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित सर्वव्यापी ईश्वररूप ॐ कारको जानना, आकाशवत् सबमें व्यापक जानके धीर पुरुष (शुद्ध उपासक) शोकको प्राप्त नहीं होते अर्थात् परमात्मरूप जानकर साधनचतुष्टययुक्त उपासक अपने मनमें निश्चय कर निश्चल रहता है कि मैं मोक्षस्वरूप ही हूं।

---

१ योगचूडामण्युपनिषदि-" प्रणवः सर्वदा तिष्ठेत्सर्वजीवेषु भोगतः। अभिरामस्तु सर्वासु ह्यवस्थासु ह्यधोमुखः॥ ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने स्यादधोमुखः॥ एवं वै प्रणवस्तिष्ठेद्यस्तं वेद स वेदवित् ॥"

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।
ॐकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः ॥

यह ॐकार मात्रारहित अर्थात् अकार उकार मकारादिमात्राओंसे रहित अमात्र (तुरीयपद) है और यह संख्या किया चाहे कि ओंकारमें कितनी मात्रायें पाई जाती हैं तो उसमें अनंत मात्रायें हैं ॐकारको जिसने सम्यक् प्रकारसे जाना है वही मुनि है और दूसरे नहीं ॥

कोई भी जिज्ञासु पुरुष यह कल्पना न करे कि ॐ कारमें तो तीन मात्रा अथवा चार मात्रा हद हैं अनंत मात्रा किस तरह होसकती हैं ? यह मिथ्या भ्रम है क्योंकि जो सर्वज्ञ सबमें व्यापक अनंत है उसका भेद किस तरह मिल सकता है जैसा इनका नाम अनंत है ऐसे इनके अनंत उपासक अनंत प्रकारके हैं। थोडा समझानेके वास्ते ऋषियोंके भेदको लिखताहूं. जैसे—बाष्कल्य ऋषिके मतावलम्बी पुरुष ॐकारको एकमात्रारूपसे भजते हैं और साल तथा काइत्थ आचार्योंके मतावलम्बी दोमात्रारूपसे, नारदऋषिके मतमें अढाई मात्रारूपसे और मौंडल किंवा मांडूक्य ऋषिके मतमें तीन मात्रारूपसे और पाराशरादि ऋषिके मतमें चारमात्रारूपसे और वशिष्टऋषिके मतमें साढे चारमात्रारूपसे भजते हैं और अन्य २ ऋषि अन्य२ प्रकारसे उपासते हैं। याज्ञवल्क्यजीने ॐकारको अमात्रारूप जानके भजन किया है ऐसे ही अन्य २ आचार्योंने भी जिसको जैसा २ अनुभव हुआ है उसी २ तरह उपासना की है। किसीने सोलह स्वरोंको सोलह मात्रा मानी, किसीने व्यंजनोंकी संख्याप्रमाण मात्रा स्वीकार की. किसीने एक एक की संधि मिलाके मात्रा ग्रहण की। ऐसे बहुत भेद हैं क्योंकि इसी अक्षरसे संपूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है इससे भ्रम न करे। अपरब्रह्मकी उपासना मात्रायुक्त है और परब्रह्मकी उपासना मात्रारहित है।

इस ॐकारके विषयमें बहुत प्रमाण हैं कहां तक कोई कहेगा ? यह ॐकार ही परब्रह्म है इससे इसकी उपासनामें अर्थात् सायुज्यमुक्तिप्राप्त्यर्थ प्रधान साधन योगमार्ग है। अतः अब दूसरे प्रकरणमें योगमार्ग कहताहूं ॥ शम् ॥

इति प्रणवज्ञानप्रकरणम् ॥

अथ योगाभ्यासप्रकरणम् ।



श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग-
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥

जिस श्रीआदिनाथ अर्थात् शिवजीने पार्वतीसे यह हठयोग विद्या कही है जो सर्वोत्तम राजयोगपर चढनेके लिये सीढी (पैरी) के समान है उस श्रीआदि नाथको नमस्कार है ।

योगका लक्षण ।

पतञ्जलिः–योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

चित्तकी वृत्तियोंके रोकनेका नाम योग है अथवा योगनाम प्राणायामादि करनेसे चित्तकी वृत्तिका निरोध होता है अर्थात् चित्तमें जो नाना प्रकारकी वासनायें उत्पन्न होती हैं उनको विचारद्वारा रोकता हुआ प्राणायामादिके क्रमसे परमात्मामें प्राप्त होना इसका नाम योग है ।

योगशिखोपनिषदि–

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ॥
एवन्तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते ॥

अपान और प्राणवायुकी एकताका नाम योग है, रज वीर्यकी एकता योग है, सूर्य और चंद्रकी एकता होना योग है, जीवात्मा और परमात्माका मिल-

१ देवीभाग० । न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥

जाना योग है इस प्रकार इन दो दोका एकरूप होना योग कहाता है इनकी एकता करनेकी जड प्राणायाम है ।

गोरक्षः—

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दू रजो रविः ॥
अनयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥

बिन्दु शिव, रज शक्ति है और बिन्दु चंद्र, रज सूर्य हैं इनको संयोग अर्थात् एकता होनेसे योगसिद्धि होकर मोक्षको प्राप्त होता है ।

योगचूडामण्युपनिषदि–

प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वश्च धावति ।
वामदक्षिणमार्गाभ्यां चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोप्याकृष्यते पुनः ।
गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ॥
अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ॥
ऊर्ध्वाधस्संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ॥

प्राण और अपानवायुके वशमें होकर यह जीव नीचे और ऊपरको दौडताहै बायें और दहिने अर्थात् इडा, पिंगला मार्गसे चञ्चल होनेके कारण दिखाई नहीं देता । जैसे रस्सीसे बँधाहुआ बाज (शिकारी पक्षी) उडगया हुआ भी फिर खिंच आता है ऐसे गुणों (रज सत तम) से बँधाहुआ यह जीव प्राण अपान वायुद्वारा खिंच आता है । अपान प्राणको और प्राण अपानको खींचता है इस प्रकार ऊपर और नीचे ठहरे हुए इन दोनों वायुओंके भेदको जो जानता है वही योगका जाननेवाला है ।

हठयोग ।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते ॥

“ ह ” कारको सूर्य “ठ” कारको चन्द्रमा कहते हैं, इन दोनोंका जो योग अर्थात् सूर्य चन्द्रमा, जो इडा पिंगला और प्राण अपान हैं उनकी एकतासे

जो प्राणायाम करनाहै उसको हठयोग कहते हैं । इस हठयोगका अभिप्राय लोमविलोम अर्थात् इडा पिंगला नाडीको एककर सुषुम्नाद्वारा प्राणायाम करना, जिससे प्राण अपानकी एकता होकर समाधिका लाभ हो। यह समाधि यही है कि, जिससे जन्मजन्मांतरोंके कल्मष नष्ट हो जीवात्मा परमात्माका ब्रह्मरन्ध्रमें एकभावसे सम्मिलन हो और काल जिसके हस्तगत होजाय अर्थात् जहां-तक इच्छा हो शरीरको धारण किये रहे अथवा परकायप्रवेशके क्रमसे अन्य २ शरीरोंमें कालांतर पर्यंत विचरा करै पश्चात् इच्छा शांत होनेपर जन्म मरण रहित होजावे अर्थात् समाधिवालेको सर्वाधिकार प्राप्त होताहै चाहे जैसा करे। परन्तु यह अधिकार जो कि पर्वतकी गुफाओंमें बैठे समाधिस्थ होरहे हैं उन्हींको है ॥

हठयोग राजयोगका परस्परसंबन्ध ।

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥

विना हठके राजयोग और विना राजयोगके हठयोग सिद्ध नहीं होता इस लिये जब तक राजयोग सिद्ध न हो तब तक दोनोंका अभ्यास करतारहे क्योंकि इन दोनोंका परस्पर संबन्ध है ।

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी ।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यपरं पदम् ॥
अमनस्कं तथाद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम् ।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकः ॥

ये सब समाधिके ही नाम हैं इन सबका अभिप्राय एक ही है । हठयोगके सिद्धि अवस्थाका नाम राजयोग है ।

योगकी श्रेष्ठता ।

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥

विना श्रेष्ठ गुरुकी कृपा इस लोक और परलोकके सुखरूपी विषयका त्यागना

आत्माका अनुभव और तुरीय अवस्था अर्थात् समाधिका लाभ ये दुर्लभ हैं। इससे सद्गुरुकी सेवामें तत्पर हो योगाभ्यास करे कि, जिससे अजर अमर हो।

नासिकेतपुराणे-नासिकेतवचनम्।

अग्निहोत्रमिदं तात संसारस्य तु बन्धनम्।
जन्ममृत्युमहामोहाः संसारे पततां ध्रुवम्॥
योगाभ्यासात्परं नास्ति संसारार्णवतारणम्।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे इन्द्राद्याः कश्यपात्मजाः॥
सर्वे योगवशात्सिद्धा गतास्ते परमां गतिम्॥

हे पिता! यह अग्निहोत्र संसारका बन्धन है और इस महामोहके संसारमें निश्चय करके जन्म मृत्यु हुआ ही करते हैं इससे योगसे परे संसाररूपी समुद्रसे पार होनेको दूसरा उपाय नहीं. क्योंकि, ब्रह्मा और कश्यपके पुत्र इन्द्रादिक सब देवता योगके प्रभावसे सिद्ध होकर श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होगये।

स्वर्गं गत्वा पुनर्जन्म संसारे भवति ध्रुवम्।
योगाभ्यासात्परं नास्ति न भूतो न भविष्यति॥
न कार्यमग्निहोत्रं तु योगाभ्यासं कुरु प्रभो॥

स्वर्गको जाके फिर संसारमें निश्चय जन्म होताहै इससे योगसे परे अन्य साधन न हुआ न होगा इस लिये हे प्रभो! अग्निहोत्रको छोडकर योगाभ्यास करो।

कूर्मपुराणे-

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति॥

योगरूप अग्नि शीघ्रही पापके समूहको दग्ध करता है और ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञानसे मोक्ष होताहै।

अत्रिसंहितायाम्-

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं योगाद्धर्मस्य लक्षणम्।
योगः परं तपोज्ञेयस्तस्माद्युक्तः समभ्यसेत्॥

न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया।
गतिं गन्तुं द्विजाः शक्ता योगात्संप्राप्नुवन्ति याम् ॥

योग करकेही ज्ञानकी प्राप्ति होती है, योगसेही धर्म प्राप्त होताहै। योगही परम तप है इससे योगका सदा अभ्यास करना उचित है। योगाभ्यास करके जिस गतिको प्राप्त होते हैं वह उग्र तप करके और मंत्रोंके जप करके वा यज्ञोंके अनुष्ठान करनेसे भी उस गतिको द्विजलोग प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं होते।

गरुडपुराणे–

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्।

इस संसारके दुःखियोंको योगही उत्तम औषध है।

योगवाशिष्ठे–

दुःसहा राम संसारविषवेगा विसूचिका।
योगगारुडमन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति ॥

हे रामचन्द्रजी ! यह संसाररूप विष विसूचिका (हैजा) का वेग बडा दुःखदाई है वह योगरूप गारुडके मंत्र करके शांतिको प्राप्त होता है अन्यथा नहीं।

योगबीजे–पार्वत्युवाच।

ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्धयोगेन योगः किं मोक्षदो भवेत् ॥

पार्वतीजीने कहा कि, हे ईश्वर ! केवल ज्ञान करके ही मोक्षकी प्राप्ति होती है दूसरे साधनसे नहीं, ऐसे सब ज्ञानी लोग कहते हैं तो तुम सिद्ध हुए योगको ही किस प्रकारसे मोक्षका देनेहारा कहते हो।

ईश्वर उवाच।

ज्ञानेनैव हि मोक्षश्च तेषां वाक्यं तु नान्यथा।
सर्वे वदन्ति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम् ॥

विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात् ।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत् ॥

हे प्रिये ! केवल ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होतीहै दूसरे साधनसे नहीं, यद्यपि यह उनका कहना यथार्थ है तथापि जैसे सब लोग कहतेहैं कि, तलवारसे शत्रुका पराजय होताहै तो इस तरह कहनेसे क्या हुआ विना युद्ध और बलके केवल तलवारसे कहीं जीत होतीहै ? ऐसे ही विना योगाभ्यासके केवल ज्ञानै मुक्ति नहीं देसकताहै ।

योगबीजे–

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥

ज्ञानी हो वा त्यागी हो वा धर्मवान् हो अथवा इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो परन्तु योगके विना हे प्रिये ! देव भी मोक्षको नहीं प्राप्त होताहै । श्रुतिः–

अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः–अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

उस आत्माके साक्षात्करनेमें एक योगही उपाय है दूसरा नहीं, योगाभ्यास द्वारा ही उस आत्मदेवको जानकर श्रेष्ठ पुरुष हर्षशोक (जन्ममरण) रूप संसारका परित्याग करतेहैं ।

महाभारते–

मोक्षपर्वमें भीष्मपितामहका वचन युधिष्ठरप्रति–

यथा चानिमिषाः स्थूला जालं भित्त्वा पुनर्जलम् ।
प्रविशन्ति यथा योगास्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥

हे राजन् ! जिस प्रकारसे मोटा मगर मच्छ बलसे जालको तोडकर पुनः अपने निवासस्थान जलमें चला जाता है वैसेही योगी लोग प्रारब्ध कर्मरूप जालको योगरूप बलसे छेदन करके सब पापोंसे रहित हुए पुनः अपने निवासस्थान ब्रह्ममें एकीभावको प्राप्त होतेहैं ।

---

१ " रूपलावण्यसंपन्ना यथा स्त्री पुरुषं विना । तथा योगेन रहितो ब्रह्मज्ञानरतोऽपि वा॥ "

यथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः ।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥
अबलाश्च मृगा राजन् वागुरासु तथा परे ।
विनश्यन्ति न सन्देहस्तद्वद्योगबलादृते ॥

जैसे बलवान् मृग जालको तोडकरके सब बन्धनोंसे मुक्त हुए इच्छानुसार सुन्दर रस्तेको चले जाते हैं और जो बलसे हीन होतेहैं वे जालमें बंधे ही मृत्युको प्राप्त होतेहैं वैसेही जो पुरुष योगरूप बल करके युक्त हैं वह प्रारब्ध कर्मरूप जालको तोडकरके देहादि सब बन्धनोंसे रहित हुए ब्रह्मभावरूप इच्छा-नुसार विमलमार्गको प्राप्त होतेहैं और जो योगबलकरके हीन हैं वह कर्मरूप जालमें ही पतितहुए नानाप्रकारकी योनियोंमें भ्रमणरूप मृत्युको प्राप्त होते हैं॥ इसी योगबलसे भीष्मपितामहने छः महीना रणभूमिमें बाणशय्या पर स्थित होकर उत्तरायण सूर्य होने पर प्राणका त्याग किया, विना योगके किसीकी ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि कालके नियमको उल्लंघन करे ।

स्कन्दपुराणे-

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि ।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥

आत्मज्ञानसे मुक्ति होती है, वह आत्मज्ञान योगके विना नहीं हो सकता और वह योग चिरकालके अभ्याससे ही सिद्ध होताहै ।

योगतत्त्वोपनिषदि-

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।
योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ॥

विना योगका ज्ञान निश्चय करके मोक्षका देनेवाला कैसे होसकता है और विना ज्ञानके योग भी मोक्ष देनेमें समर्थ नहीं है इसलिये मोक्षाभिलाषी ज्ञान और योग दोनोंको दृढता (मजबूती) से अभ्यास करे ।

शाण्डिल्योपनिषदि–

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं मुनीश्वर ।
योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥
तस्मिन्निरोधिते नूनमुपशान्तमनो भवेत् ।
मनःस्पन्दोपशान्त्यायं संसारः प्रविलीयते ॥

हे मुनीश्वर ! चित्तके नाश करनेके लिये योग और ज्ञान दो क्रम हैं,योगसे चित्तवृत्तिकी रुकावट होती है और ज्ञानसे यथार्थ वस्तु अर्थात् सत्का बोध होता है इससे चित्तकी वृत्तियोंके अवरोधसे निश्चय करके मन शान्त हो जाताहै और मनकी चंचलता शान्त होनेसे यह संसारी प्रपंच छूट जाताहै ।

ध्यानदीपे–

योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन पश्यति ।

जिन मुमुक्षुपुरुषोंका चित्त नानाप्रकारके संकल्प विकल्पों करके चंचल है उनको योगाभ्यास ही चित्तकी एकाग्रताका मुख्य साधन है।

बृहदारयोपानषदि–

तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य ॥

अन्तके समयमें इस पुरुषका मन जिस वस्तुके विषे आसक्त होता है उसी वस्तुके सहित कर्मोंको प्राप्त होताहै ।

---

१ श्रीमद्भागवते–" यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गंध आशयात् ।
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥ "

योगबीजे--

देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत्।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम्॥
देहान्ते किं भवेज्जन्म तन्न जानन्ति मानवाः।
तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जपश्च केवलं श्रमः॥
पिपीलिका यदा लग्ना देहे ज्ञानाद्विमुच्यते।
असौ किं वृश्चिकैर्दष्टो देहान्ते वा कथं सुखी॥

देहके अन्तसमयमें जीव जिस २ को विचारता है वही वह जीव होजाता है यही जन्मका कारण है। देहके अन्तमें कौन जन्म होगा यह मनुष्य नहीं जानते हैं. जिससे ज्ञान, वैराग्य, जप ये केवल परिश्रम मात्र हैं। जब चींटी देहमें लगजाती है और ज्ञानसे छूट जाती है तो बिच्छुओंसे डसा हुआ यह जीव देहके अन्तमें कैसे सुखी होसकता है? अर्थात् चींटी शरीरमें लगनेसे विशेष घबराहट नहीं होती इससे सहनः होजाताहै परन्तु मरण समयमें तो सहस्र विच्छू डसनेके समान कष्ट होताहै वह सहन कैसे होगा? अभिप्राय यह है कि, योगी ही इन सब कष्टोंको सहन कर सावधानतासे प्राणको परब्रह्ममें लीन करता है दूसरे साधनवाले नहीं। मनकी चंचलता प्राणवायुके निरोधसे ही दूर होतीहै।

मनका जय।

योगबीजे-नानाविधैर्विचारैस्तु न साध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्रायः प्राणस्य जय एव हि॥

अनेकों प्रकारके विचारोंसे मन साध्य नहीं होता है इससे प्राणवायुके जीतनेसे ही मन जीता जाता है।

---

१ योगरहस्ये-"चित्तं न साध्यं विविधैर्विचारैर्वितर्कवादैरपि वेदवादिभिः। तस्मात्तु तस्यैव हि केवलं जयः प्राणो हि विधेत न कश्चिदन्यः"॥ अन्यच्च-प्राणान्प्रपीडयेह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत। दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः॥"

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते ।

जो कोई वायुको रोकता है वही मनको भी रोकता है ।

योगशिखोपनिषदि–

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम् ।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ॥

योगसे श्रेष्ठ न कोई पुण्य है, न कोई कल्याणदायक है और न कोई सूक्ष्म वस्तु है अर्थात् योगसे बढकर कुछ नहीं है । यह जो योगका माहात्म्य कहा गया है वह हठयोग ही है इस हठयोगके अधिकारी मनुष्यमात्र है जो कोई नियमसे इस योगका सेवन करता है वह अवश्यकरके मोक्षका अधिकारी होता है और जीवनपर्यंत मानके साथ सुख भोगता है और पुनः जन्म लेनेपर भी पवित्र कुलमें जन्म लेता है ।

गीतायाम्–शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥

योगसे भ्रष्ट मनुष्य पवित्र धनीके कुलमें जन्म लेता है अथवा बुद्धिमान् योगियोंके कुलमें होता है । अर्थात् योग करते २ योग सिद्ध न हुआ और शरीरका अन्त होगया तो यदि देहान्तके समय उसका चित्त धनादिकोंके सुखकी ओर गया तो वह पवित्र धनियोंके कुलमें जन्म. ले सुख भोगताहै और देहांतके समय योगहीमें चित्त गया तो वह योगियोंके कुलमें उत्पन्न हो पुनः योगाभ्यासको करता हुआ सिद्धियोंके सहित परमपदका लाभ उठाताहै और जो थोडा थोडा काल भी अभ्यास शुद्धतासे किया करताहै वह भी भाग्यवान्के घरमें जन्म लेताहै और उसकी वासना भी योगमें लगी रहतीहै उसके प्रभावसे किसी कालमें मुक्त अवश्य होजाताहै ।

योगवासिष्ठे–

द्वे बीजे राम चित्तस्य प्राणस्पन्दनवासना ।
एकस्मिंश्च तयोर्नष्टे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ॥

हे राम ! प्राणकी क्रिया और वासना यह दोनों चित्तके बीज हैं, इन दोनोंके मध्यमें एकके नष्ट होने पर दोनों नष्ट होजाते हैं ।

मुक्तिकोपनिषदि-

अध्यात्मविद्याधिगमस्साधुसङ्गतिरेव च ।
वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥
एतास्ता युक्तयः पुष्टास्सन्ति चित्तजये किल ॥

वेदांतविद्यामें अभ्यास, सत्पुरुषोंकी संगति, संसारी वासनावोंका त्याग और प्राणायाम यही युक्तियां चित्तवृत्तिके निरोधकरनेमें प्रबल हैं ।

योगवासिष्ठे-

तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च ।
मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितान्यतः ॥
त्रय एते समं यावन्न स्वभ्यस्ता मुहुर्मुहुः ।
तावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाश्रितैः ॥

तत्त्वज्ञान, मनका नाश और वासनाका क्षय ये तीनों परस्पर कारण होकर दुःखसे साध्यरूप होकर स्थित हैं इससे जबतक इन तीनोंका भली भांति वारंवार अभ्यास न कियाजाय तबतक अन्य कारणोंसे ब्रह्मज्ञानकी संप्राप्ति नहीं होतीहै ।

मुक्तिकोपनिषदि-

जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना ।
सा चिराऽभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥
तस्मात्सौम्य प्रयत्नेन पौरुषेण विवेकिना ।
भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेव समाश्रय ॥

सैकडों जन्मोंसे झूंठी संसारी ममताका अभ्यास होरहाहै इसलिये विना बहुतकाल योगाभ्यास किये वह कहीं नष्ट नहीं होसकती । हे सौम्य ! इस

हेतुसे यत्न पुरुषार्थ (सामर्थ्य) और विचार इन तीनोंहीके आश्रय होकर योगबलसे वासनावोंको दूरहीसे त्यागदे ।

तस्माद्वासनया युक्तं मनो बद्धं विदुर्बुधाः ।
सम्यग्वासनया त्यक्तं मुक्तमित्यभिधीयते ॥

क्योंकि वासनाओंसे युक्त मनको पंडितलोग बँधाहुआ मन कहतेहैं और अच्छे प्रकार वासनासे रहित मनको मुक्त कहतेहैं ॥

योगबीजे–

तत्रापि साध्यः पवनस्य नाशः
षडङ्गयोगादिनिषेवणेन ।
मनोविनाशस्तु गुरोः प्रसादा-
न्निमेषमात्रेणसुसाध्य एव ॥

षडंगयोग अर्थात् आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिके अभ्याससे वायुका नाश साधन करना चाहिये और मनका विनाश तो गुरुके प्रसादद्वारा पलभरमें साध्य होसकताहै ! अभिप्राय यह है कि, जब पवन साध्य होजायगा तो मन आप ही शांत होगा, क्योंकि दोनोंका परस्पर संबन्ध है परन्तु यह मन विना योगके अन्य प्रकार साध्य होनेमें बडा कठिन है यह त्रैलोक्यकी सृष्टि इसी मनके आश्रयसे है, जहांतक मनकी शुद्धि नहीं होती तहांतक प्राणी अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ दुःखको भोगताहै, कभी कहीं सत्सङ्ग पडनेसे पुण्यके प्रभावसे स्वर्गादिका भोक्ता होताहै, कभी खोटे आचरणसे नरकमें पडकर दुःख भोगताहै इसी प्रकार मनकी शुद्धि विना मारा पीटा इधरसे उधर भटकता फिरताहै । कहाभी है–

पाद्मे–पुनर्देहान्तरं याति यथा कर्मानुसारतः ।
आमोक्षात्संचरत्येवं मत्स्यः कूलद्वयं यथा ॥

कर्मानुसार दूसरे देहको प्राप्त होता है जिस तरह नदीका मच्छ कभी इस किनारे और कभी दूसरे किनारे(तट)जाता है इसी तरह यह प्राणी मोक्ष न होने

तक अनेक योनियोंमें भ्रमण करता है। इससे मनके शुद्ध करनेका उपाय एक योग ही है, योगके आश्रित हो यह मन विकारोंसे नष्ट होजाता है परन्तु योग कुछ तमाशा नहीं है बडे क्लेशसे साध्य होता है, सब इन्द्रियोंके स्वादसे रहित हो सत्पुरुषकी संगति करते करते कालांतरमें योग शुद्ध रीतिसे होने लगता है, फिर वह पुरुष विषयोंकी तरफ नहीं देखता और गुफाओंमें काल व्यतीत करता हुआ जन्मजन्मांतरोंकी स्मरणशक्तिका अधिकारी होकर जरामरणसे रहित होताहै। **विचार करनेकी बात है**–कि, इंद्रियोंके स्वादका त्याग क्या सहज है? पुनः जब तक जितेन्द्रिय नहीं होगा तब तक सत्पुरुष कैसे मिलेंगे? इन्द्रियोंके स्वाद लेते हुए योगाभ्यास कैसे होगा? इसलिये योगका साधन कुछ कथन मात्रसे नहीं होसकता इसमें अत्यन्त परिश्रमका काम है इसका अभ्यासी क्लेश क्या वस्तु है यह ख्याल ही न करे और एक चित्तसे महामंत्रका स्मरण करता हुआ वासनाओंसे रहित, दुष्टोंसे अलग, आत्माके विचारमें मग्न, आलस्य रहित होकर सदा वायुकी आराधना नियमसे करता रहे तब वह योगका लाभ उठाता है और उत्तम योगियोंका दर्शन आपसे आप होता रहता है। और इस शरीरके अन्तर जो लोक लोकांतर और तीर्थ हैं समस्तका दर्शन होता है।

मनुष्यदेह वर्णन।

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमान्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तंते पीठदेवताः॥

प्राणीके इस शरीरमें सात द्वीप सहित सुमेरु है और नदी, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, सब नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ और पीठदेवता आदि सब इस शरीरमें वर्तमान हैं।

---

१ विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः।
दिनेदिने यस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः॥"

सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥

उत्पत्ति और नाशके करनेवाले चंद्रमा और सूर्य इस शरीरमें घूमते रहते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी ये पांच तत्त्व सर्वदा शरीरमें वर्तमान हैं।

श्रीपर्वतं शिरःस्थाने केदारन्तु ललाटके ।
वाराणसी महाप्राज्ञ भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यमे ॥
कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हृत्सरोरुहे ।
चिदम्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम् ॥

शिरमें श्रीशैल क्षेत्र है, ललाटमें केदार क्षेत्र है और हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले ! भृकुटी और नासिकाके बीचमें काशी क्षेत्र है, स्तन (छाती) में कुरुक्षेत्र और हृदय-कमलमें प्रयागक्षेत्र है, हृदयके बीचमें चिदम्बर क्षेत्र और मूलाधारमें लक्ष्मीजीका स्थान है। यदि यह शंका हो कि, मूलाधारमें तो गणपतिजीका स्थान है ? तो कहीं लक्ष्मीजी गणेशजीकी भी स्त्री कहीगई हैं, वह लक्ष्मीविनायक नाम करके गाणपत्योंमें पूजनीय है।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
मेरुं संवेष्टय सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते ॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥

त्रैलोक्यमें जो चराचर वस्तु हैं वह सब इसी शरीरमें मेरुके आश्रय होके सर्वत्र अपने २ व्यवहारको करते हैं जो कोई यह सब जानता है वह योगी है इसमें संदेह नहीं इससे योगाभ्यास अवश्य करना चाहिये कि, जिसमें ये सब लाभ प्राप्त हों और कालभी लज्जित हो। देखिये :इसी कालके भयसे ब्रह्मादिक देवताओंने पवनका अभ्यास किया है। यथा–

ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः ।
अभूवन्नन्तकभयात्तस्मात्पवनमभ्यसेत् ॥

ब्रह्मा आदि देवता भी काल जीतनेके लिये प्राणवायुके अभ्यासमें सावधान रहे इससे प्राणवायुके जीतनेका अभ्यास अवश्य करे । प्राणायाम करते २ जब प्राणवायु सुषुम्नामें प्रवेश करता है तब मनकी स्थिरता प्राप्त होती है, इससे जो कोई योगका अभ्यास करे वह जहांतक सुषुम्नामें प्राणका संचार न हो तहां तक न छोडे । कारण कि, विना सुषुम्नामें प्रवेश हुए उसको मनकी स्थिरताका क्या स्वाद मिलेगा ? और जब तक उसको स्वाद प्राप्त नहीं होगा तब तक उसका चित्त योगमें पूर्ण रीतिसे नहीं लगेगा, इस लिये सुषुम्नाके प्रवेशतक अभ्यास अवश्य करे और यदि प्रवेश होनेके अनंतर दैवसंयोगसे अभ्यास छूट जायगा तो उसको योगका आनन्द तो स्मरण रहेगा ।

मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते ।
यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥

प्राणवायुका सुषुम्नाके बीचमें चलने पर मनकी स्थिरता होजाती है वह जो मनका भलीप्रकार स्थिर होजाना है उसको ही मनोन्मनी अवस्था कहते हैं ।

विधिवत्प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते ।
सुषुम्नावदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः ॥

विधिपूर्वक अर्थात् आसन आदिसे युक्त शनैः प्राणायामोंसे नाडियोंके समूहको अच्छी तरह शुद्ध होने पर इडा और पिंगलाके बीचमें जो सुषुम्ना नाडी स्थित है उसके मुखको अच्छे प्रकारसे छेदन (तोड) करके मुखमें सुखसे प्राणवायु प्रवेश करता है । क्योंकि सुषुम्ना नाडी कफ आदि बंधनोंसे ढपी रहती है प्राणायाम करते २ वह मार्ग शुद्ध होजाता है । इस वास्ते आलस्यका परित्याग कर प्राणवायुकी आराधना सदा करना चाहिये ।

योगमार्ग ।

अब योगमार्ग लिखता हूं—इसमें एक तो अष्टाङ्ग योग और दूसरा कोइ षडङ्ग योग कहते हैं ।

पतञ्जलिः—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ अंग योगके हैं। यम नियमको छोडकर शेष छः षडङ्ग कहाते हैं।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

योगके आठ अंगोंके साधनसे क्रम २ करके मलिनताका नाश होकर ज्ञानका प्रकाश होता हुआ विवेकख्यातिकी बढती होती है अर्थात् शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है।

यम

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

किसी जीवको नहीं मारना, सच्चा बोलना, चोरी कभी नहीं करना और न चोरी करनेको उपदेश देना, न मनमें लाना, वीर्य (कामदेव) की रक्षा सदैव करना और किसी प्रकार धनादिकी इच्छा नहीं करना इसको यम कहते हैं। इनका फल ऐसा है कि, हिंसा न करनेसे कोई भी मनुष्य, पशु पक्षी, व्याघ्र, सर्पादि उसको भय नहीं देते अर्थात् उसको देखते ही शांत होजाते हैं और न उसको भय मालूम होता है। सत्य बोलनेसे वाक्यसिद्धि होजाती है अर्थात् जो कुछ वह कहता है सब सत्य होता है। चोरी न करनेसे वह सबका प्यारा होजाता है और जो कुछ द्रव्यादिकी कभी इच्छा करता है वह सब वस्तु आपसे आप ही प्राप्त होती है। वीर्यकी रक्षा करनेसे अर्थात् स्वप्नमेंभी वीर्यपात न होनेसे वह पुरुष बलीसे बली होता है स्वरूपवान् होता है और मन उसका सदैव स्थिर रहता है और अजर अमरताको प्राप्त होता है। धनादिकी इच्छा न करनेसे अर्थात् विषयसे रहित होनेसे उसकी पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।

नियम

शौचसन्तोषतपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

आचार धर्म पालन करना, प्राप्तवस्तु और अप्राप्त वस्तु दोनोंमें तृप्त रहना अर्थात् मिलने पर हर्ष नहीं और न मिलनेका शोक नहीं, जप, व्रत, तीर्थ निमित्त क्लेशका सहन करना, वेद पढना पढाना, मोक्षशास्त्रमें तत्पर रहना और ईश्वरकी भक्ति करना इसको नियम कहते हैं। इनका माहात्म्य

ऐसा है कि शौचके साधनसे सत्त्व बुद्धि, मनकी शुद्धता, एकाग्रता, इन्द्रियोंका जय और आत्माका दर्शन होता है । सन्तोषसे उत्तम सुख मिलताहै अर्थात् वासनाही दुःखादिका मूल है उससे रहित होजाता है । तपसे शरीर सिद्धि और इन्द्रियोंकी सिद्धि होतीहै अर्थात् शरीरमें जो रोगादिका भय है वह नष्ट होजाता है और इन्द्रियद्वारा दूरदृष्टिका लाभ अर्थात् श्रवणसे दूरकी भी बात सुननेमें आतीहै और नेत्रसे दूरतक देखसकताहै ऐसे सब इंद्रियोंकी सिद्धि होती है । स्वाध्यायसे इष्टदेवताका दर्शन होताहै और मोक्षके प्राप्त करानेवाले योगीजनोंका दर्शन और मोक्ष प्राप्त होताहै । और ईश्वरकी भक्ति करनेसे समाधिका लाभ अर्थात् कैवल्यपद प्राप्त होताहै यह बात स्मरण रहे कि, यह सब लाभ योगिहीको प्राप्त होतेहैं और उक्त साधन योगी ही करता है ।

यम (अहिंसा) आदि ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥

किसी जीवको न मारना, और न दुःखदायी वचन बोलना, सच्चा बोलना चोरी नहीं करना, वीर्य (कामदेव) की रक्षा करना, किसीके दुःख देने पर भी क्रोध नहीं करना, धीरज रखना, दुःखीकी रक्षा करना, नम्रता और अल्पाहार अर्थात् बहुत भोजन नहीं करना यह दश यम हैं ।

विशेषभोजननिषेध ।

मनुः–अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अधिक भोजन करनेसे अनारोग्यता और आयुष्यका नाश होताहै; वह स्वर्गका विरोधी है अर्थात् यज्ञ, जप आदिमें वायुके विकारसे बैठा नहीं जाता है उपाधि करनेसे स्वर्गका भी विरोधी है, अपवित्र और लोकमें निंदित है इससे विशेष भोजन न करे ।

नियम ।

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम् ॥
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ।

तप, संतोष, देवतामें भाव रखना, दान देना, ईश्वरकी पूजा अर्थात् मूर्ति-पूजन करना, गुरु और वेदांतके वाक्योंको सुनना, लज्जा अर्थात् लोकापवादको भी बचाना, बुद्धि शुद्ध रखना और जप होम करना ये दश नियम योगशास्त्रके पंडितोंने कहेहैं ।

आसन ।

पतञ्जलिः–स्थिरसुखमासनम् ।

जिससे स्थिरताका सुख हो अर्थात् जहां तक इच्छा हो एकही आसनसे बैठा रहे क्लेश कुछभी न हो उसको आसन कहते हैं। आसन सिद्ध होनेसे योगी शीत, उष्ण, सुख, दुःखसे रहित होता है, मनको वशीभूत करलेता है और सब रोग नष्ट होजातेहैं "आसनं विजितं येन जितं तेन जगत्त्रयम्" जिसने आसनको जीत लिया है उसने तीनों लोकोंको जीत रक्खा है ।

चतुराशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् ।
ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् ॥

चौरासी लक्ष आसनोंमें श्रीमहादेव स्वामीने चौरासी आसन सार रक्खे हैं। हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थमें आत्माराम योगीने सोलह आसन रक्खे हैं और भी योगके ग्रन्थोंमें कहीं कुछ न्यूनाधिक माने हैं परन्तु योगके विशेष प्रयोजनीय आसन अल्प ही हैं, ग्रन्थोंकी सम्मतिसे अवश्य प्रयोजनीय आसनोंको लिखता हूँ ।

स्वस्तिकासन ।

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तु प्रचक्षते ॥

जानु अर्थात् गांठोंके बीचमें दोनों पाओं (पगतली) को लगाकर सीधा शरीर करके सावधान बैठना उसे स्वस्तिकासन कहतेहैं ।

बद्धपद्मासन ।

**वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥**

बायीं जांघके ऊपर दहिना पांव (चरण तरवा) रखके तदनुसार बांयां पांव दहिने जांघके ऊपर रक्खे । पुनः पृष्ठ भागसे एक हाथ घुमाके एक चरणके अंगूठेको पकडे तदनुसार दूसरा हाथ घुमाकर दूसरे चरणके अंगूठेको दृढ पकडे, चिबुक (डाढी) को हृदयके समीप दृढतासे लगाके नासिकाके अग्रभागको देखे, यह बद्धपद्मासन[1] हुआ । यह योगियोंके सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है, सबप्रकारके उदररोग नाश हो जातेहैं । हाथोंको न घुमाकर दोनों हाथोंको जानुपर उत्तान रखनेसे पद्मासन होताहै, परन्तु शेष पूर्ववत् रक्खे ।

सिद्धासन ।

**योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकवाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥**

गुदा और लिंगका जो मध्य भाग (योनिस्थान) है वहां बायें पांवकी एडी (पार्ष्णि)लगावे और दूसरा पांव लिंगके ऊपरी भागपर रक्खे और हृदयके समीप भागमें डाढी (चिबुक) दृढतासे लगाकर निश्चल मनसे अचल दृष्टिसे

---

१ केवल इसी आसनका अभ्यास करनेसे और इसी आसनसे प्राणवायुके शनैः शनैः अभ्यास करनेसे ब्रह्मरंध्रमें वायु पहुँचतीहै (समाधि लगजाती है) परन्तु विना गुरुके भय है ।

भ्रूमध्यको देखता रहै यह मोक्षके किंवाडका खोलनेवाला सिद्धोंने सिद्धासन कहा है इसीको वज्रासन, मुक्तासन भी कहते हैं ।

उग्रासन ।

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा । जानूपरि न्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः ॥

दोनों पावोंको पृथ्वीमें दण्डाके समान फैलाकर दोनों हाथोंसे दोनों पांवोंके अंगूठेको पकडकर गांठ (जानु) के ऊपर शिर रक्खै परन्तु पांव पृथ्वीमें चिपटे रहे किंचित् भी न उठे रहें इसको पश्चिमतान वा उग्रासन कहतेहैं। इस आसनके करनेसे प्राण सुषुम्नामें प्रवेश करताहै यह आसनोंमें मुख्य आसन है, इससे क्षुधा लगतीहै, रोगका अभाव करताहै, उदरके सब रोगोंको नष्ट करताहै, वायु स्थिर होताहै अजीर्णको नाश करताहै । इसी आसन पर कुछ लोग प्राणायामभी करतेहैं परन्तु मेरी समझमें ठीक नहीं है इसमें रोगका भय है । अलबत्ता इस पर जितना काल स्वयं पूरक रेचक मंद २ होताहुआ स्थिर रहेगा उतना ही लाभ है अर्थात् प्राण सुषुम्नामें प्रवेश करेगा; चित्तकी स्थिरता की वृद्धि होगी, चित्त बहुधा शांत रहा करेगा ।

मयूरासन ।

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः । उच्चासनो दण्डवदुत्थितः स्यान्मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम् ॥

दोनों हाथोंको भूमिमें स्थापित करके हाथोंके गांठों (मणिबन्ध) को मिलाकर नाभिमें वा पार्श्वमें लगाके उसीके आधार पर दंडके समान उठा हुआ उच्चासन होताहै इसी आसनको मायूर (मोर) योगिजन कहतेहैं । इस आसनके करनेसे गुल्म, जलोदर, तिल्ली आदि उदररोग सब नष्ट हो जातेहैं । वात पित्त कफ आलस्य आदि दोष शमन होतेहैं और कैसा भी अन्न

जो पचने योग्य न हो उसको भस्म करके जठराग्निको प्रदीप्त करता है और नादको भी उत्पन्न करता है ।

सिंहासन ।

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् । दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके ॥ हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांगुलीः संप्रसार्य च । व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ॥ सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवैः । बंधत्रितयसंधानं कुरुते चासनोत्तमम् ॥

अंडकोश (वृषण) के नीचे सीवनी नाडीके दोनों पार्श्व भागोंमें क्रमसे गुल्फोंको लगावे। अर्थात् दक्षिण पार्श्वमें वामगुल्फको और वाम पार्श्वमें दक्षिण-गुल्फको लगाके सावधान हो बैठे और दोनों जानुओंके ऊपर दोनों हाथकी अंगुलियोंको फैलाकर स्थापित करै और मुख अच्छी तरह प्रसारित (खोलना-बाना) कर जीभको बाहर निकाल बडी २ आँखोंसे नासिकाके अग्रभागको देखे । योगियोंमें जो श्रेष्ठ उसका यह सिंहासन पूजित होता है यह सम्पूर्ण आसनोंमें श्रेष्ठ है इसके अभ्यास करनेसे तीनों बन्ध अर्थात् मूलबन्ध, जाल-न्धरबन्ध और उड्डीयानबन्ध आपही साध्य होजाते हैं। ये तीन बन्ध ठीक होजानेसे योग अवश्य सिद्ध होता है ।

मत्स्येन्द्रासन ।

वामोरुमूलार्पितदक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवाम-पादम् । प्रगृह्य तिष्ठेत्परिवर्तिताङ्गः श्रीमत्स्यना-थोदितमासनं स्यात् ॥

वाम जंघाके मूलमें दक्षिणपादको रखकर और जानुसे बाहर वामपादको हाथमें लपेटकर (पकडकर) और वामभागसे पीठकी तरफ मुखको करके जिस आसनमें टिके वह मत्स्येन्द्रनाथका कहा मत्स्येन्द्रासन होता है। इसी

प्रकार दक्षिण जंघाके मूलमें वामपादादि क्रमसे करे (परन्तु यह आसन विना देखे नहीं आता) इस आसनके अभ्याससे सब रोग नष्ट होजाते है, कुण्डलिनी जागृत होती है, विन्दुकी स्थिरता होती है और भी वहुत गुण हैं। समग्र आसनोंमें सिद्धासन सबसे श्रेष्ठ है केवल इसी आसनके अभ्याससे जिज्ञासुका कार्य सिद्ध होता है। इस आसनके अभ्यास करनेसे ७२००० बहत्तर सहस्र नाडियोंका मल शुद्ध होजाता है। इसपर केवल कुम्भकका अभ्यास करनेसे मूलबंध-उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध यह तीनों कुछ कालमें स्वयं होजाते हैं और योगीको ये तीन मुख्य हैं।

आत्मध्यायी मिताहारी यावद्वादशवत्सरान् ।
सदा सिद्धासनाभ्यासाद्योगी निष्पत्तिमाप्नुयात् ॥

आत्माके ध्यानका कर्त्ता और मिताहारी (पुष्ट कारक मधुर आहार कट्-वम्लादिवर्जित) होकर बारहवर्ष पर्यन्त सदैव सिद्धासनका अभ्यास करनेसे योगी योगकी सिद्धिको प्राप्त होता है "नासनं सिद्धसदृशम्" परन्तु आसनको दृढ लगाके एक प्रहरसे कम न बैठे।

षट्क्रियाप्रकार।

जिन पुरुषोंको कफ वात पित्तकी अधिकतासे शरीरमें स्थूलता (मोटापन) हो उनको क्रिया करना आवश्यक है और जिनका शरीर कृश (पतला) और वातादिककी अधिकतासे युक्त न हो उनको थोडे दिन तक क्रिया करने चाहिये और जब कफादि विकारोंकी शुद्धता समझ पडे तब प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये. क्योंकि, विना क्रिया किये नाडियोंके मल अर्थात् वात पित्त कफादिकी शुद्धता नहीं होती और विना मल शुद्धिके प्राणायाम शुद्ध नहीं होता इससे क्रिया करना आवश्यक है। किसी आचार्यके मतसे प्राणायाम करते २ नाडियोंके मल शुद्ध होजाते हैं परन्तु पहिले कुछ कालतक क्रिया कर लेनेसे प्राणायाम प्रारम्भ करना उत्तम पक्ष है और जो लोग केवल क्रियाही करते हैं, प्राणायाम प्रत्याहारादिका क्रम न उन्हें माॡम है और न किसीसे जानकर करते हैं उनका काल व्यर्थही समझना चाहिये।

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत् ॥

जबतक नाडी मलसे व्याप्त है तबतक प्राण मध्यग अर्थात् सुषुम्ना मार्गसे नहीं चल सकता किन्तु मलशुद्धि होनेपर ही सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करेगा और जब मल नाडियोंमें विद्यमान है तब उन्मनीभाव कहां? पुनः मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि कैसे होसकती है?

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः॥

मलसे व्याप्त सम्पूर्ण नाडियोंका समूह जब शुद्धिको प्राप्त होताहै तभी योगी प्राणवायुके रोकनेमें समर्थ होताहै।

मेदःश्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु न चरेत्तानि दोषाणां समभावतः॥

जिस पुरुषके मेदा और श्लेष्मा (कफ) अधिक हो वह पुरुष पहिले षट्क्रियाका अभ्यास करे और जिसको कफादिकी अधिकता न हो वह दोषोंकी समानतासे न करे।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते॥

धौति १ बस्ति २ नेति ३ त्राटक ४ नौलिक (नौली) ५ और कपाल-भाति ६ यह छः क्रिया बुद्धिमानोंने योगमार्गमें कही हैं।

धौति।

चतुरंगुलविस्तारं हस्तपंचदशायतम्।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्॥

चार अंगुलका चौडा और पन्द्रह हाथका लम्बा वस्त्र, गीला करके गुरू-पदेशसे धीरे २ ग्रास (निगले—खावे) करे। अभ्यास करनेसे चार अंगुलसे

द्वादश अंगुलतक चौडा और पन्द्रह हाथसे तीस हाथ तक लम्बा ग्रासकर सकता है बल्कि इससे भी अधिक अभ्यासी लोग करते हैं परन्तु वस्त्र दर्दरा हो क्योंकि वारीक (सूक्ष्म—पतला) वस्त्र होनेसे उदरमें ग्रन्थि पडजाती हैं पीछे मुखसे निकालनेमें कष्ट होता है । कुछ अभ्यासी लोग वस्त्रको ग्रासकर पीछे एकवारही वमन कर देतेहैं परन्तु इसमें कुछ अर्थ नहीं । इस धोतीके करनेसे कास, श्वास, प्लीहा, वीस प्रकारके कुष्ट और कफरोग नष्ट होते हैं ।

बस्ति ।

नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधारकुंचनं कुर्यात्क्षालनं बस्तिकर्म तत् ॥

नदीमें जाके नाभिप्रमाण जलमें उत्कटासनसे वैठे अर्थात् दोनों पैरोंकी एँडियों (पार्ष्णि) पर चूतड (नितम्ब) रखकर अंगुलियोंके आधारसे वैठना, पश्चात् गुदाको वार २ आकुञ्चन करे (सकोडे) उससे जल भीतर जाता है उस जलको नौली कर्मसे चलाकर निकाल दे इसको वस्तिकर्म कहते हैं । और कोई बांसकी नली कुछ गुदामें प्रवेश करके कुछ वाहर रखके जल खींचते हैं । परन्तु अभ्यासी (साधु) उदरमें जो दो नल हैं उनको प्रथम उठानेका अभ्यास करते हैं, अनन्तर फिरानेका अभ्यास करके उसी मार्गसे गुदाद्वारा जल खींचते और बहिर्गत करते हैं इस क्रियाके करनेसे गुल्म, प्लीहा, जलोदर, वात पित्त कफसे उत्पन्न रोग सव नष्ट होजाते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मन प्रसन्न रहता है और भी बहुत गुण हैं (परन्तु इस क्रियाका करनेवाला पुरुष बहुधा रोगयुक्त ही देखनेमें आया (विरलाही कोई साध्य हुआ) ।

इससे शंख पछाड उत्तम होता है अर्थात् शौच (मलत्याग) के पहिले यथेष्ट जलको पीकर उदरको घुमावे (फेरे) पीछे मलत्याग करनेको जावे इसी तरह नित्य अभ्यास करते २ कुछ कालमें जल सहित मल गिर पडता है शरीर स्वयं विकार रहित स्वच्छ होजाता है ।

नेति ।

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥

एक वीता प्रमाण चिकना सूत्र ले नासिकासे प्रवेश करके मुखसे निकाले इसको सिद्धोंने नेती कहा है। वीताप्रमाण (बारह अंगुल) सूतकी पतली रस्सी (रज्जु) १९–२०–२९ तन्तु (सूत्र) प्रमाणकी बनाके (दृढ करनेके वास्ते मोम लगा देवे) उसको नासिकासे छोड मुखसे निकालके दो चार बार फेरे पुनः द्वितीय नासिकासे करे। इसप्रकार नित्य करनेसे शिरके सब रोग नष्ट होजाते हैं उपनेत्र (चश्मा) लगाना नहीं पडता। नासिकाका कफ नष्ट होजाता है और प्राणायाम सरलतासे होताहै। कोई २ नासिकाके प्रथम छिद्रसे प्रवेश कर दूसरे छिद्रसे निकालते हैं।

त्राटक।

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्॥

सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् एक छोटी (बारीक–चमकीली) वस्तु रखकर एकाग्र चित्तसे निश्चल दृष्टि (पलकको न फिराना) लगाकर जबतक आंसू न गिरें तबतक देखे इसके अभ्यास करनेसे नेत्रके रोग सब नष्ट होजाते हैं। तन्द्रा आलस्य आदिका नाश होजाताहै और चित्तमें एकाग्रता प्राप्त होतीहै।

नौलि।

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते॥

उदरको वेगसे जलभ्रमरकी तरह सव्य अपसव्य (बायें दाहिने) घुमावें इसको सिद्धोंने नौली कहा है और उदरमें जो दो नल हैं उनको उठाके दक्षिण वाम भागसे फेरे यह एक प्रकार है। इस नौली कर्मके करनेसे अग्नि-दीपन और वात आदि दोष शमन होते हैं शरीर हलका हो जाताहै वायु सुषु-म्नामें प्रवेश करताहै चित्तका अवलम्बन होताहै। यह कर्म हठयोगमें श्रेष्ठ है।

कपालभाति।

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी॥

लोहकारकी भस्त्रा (धौंकनी) के समान नासिकासे रेचक पूरक बार २ जोरसे दक्षिण वाम करके करे इस क्रियासे कफका नाश होताहै वायुकी स्थिरता होतीहै शिरका भारीपन जाता रहताहै।

यह षट्क्रियायें जो कहीं उनमें धोती, नेती, नौली अत्यन्त उपयोगी हैं और एक ब्रह्मदण्ड—ब्रह्मदांतन नाम करके विख्यात है। सूतकी रस्सी कनिष्ठिका सदृश स्थूल (मोटी) सवा हाथकी लम्बी बनाके मोम लगावे अनन्तर क्रम २ से मुखमें प्रवेश करे नाभि तक पहुंचावे दो चार बार प्रवेश करे और निकाले इसके करनेसे पित्त, कफ और अन्य विकार भी मुखसे गिर पडतें हैं, अपानका उत्थान भी होता है, और एक कुञ्जल क्रिया करके विदित है मुखसे यथेष्ट जल पीकर थोडे कालमें वमन (उलटी) करदेवे इसमें अभ्यासी लोग घडा दो दो घडा जल पीजाते हैं पुनः वमन कर देते हैं, वमन करनेसे पित्तादि विकार बहिर्गत होजाते हैं। और एक गणेश क्रिया करके प्रकाशित है। मल बहिर्गत होजाने पर गुदामें अंगुली प्रवेश कर चक्रोंको मलसे स्वच्छ करे अर्थात् जलसे धोवे इससे बवासीर आदि गुदाके रोग नष्ट होजाते हैं। परन्तु कुछ लोग अंगुली प्रवेश करते २ हस्त प्रवेश करने लग जाते हैं और कुछ लोग मल बहिर्गत होनेके पूर्वहीसे अंगुली द्वाराही मल निकालतेहैं, यह सब अज्ञानता है। इससे रोगोंकी वृद्धि ही होती है अर्थ कुछ नहीं निकलता इसलिये यह क्रिया करना सर्वथा वृथा है। " इन ऊपर लिखे हुए षट्क्रिया-दिकोंमें कई प्रकारके भेद[1] हैं " परन्तु जो पुरुष क्रिया ही करते २ दिन बिताते हैं उनका परिश्रम मात्रही फल है। गणेशक्रिया और बस्तिक्रिया रोगोंको उत्पन्न करती है अतः धोती, नेती, नौली वा ब्रह्मदांतन और शंखपछाड इनका अभ्यास करना ठीक है क्योंकि इतना रोगका भय इनमें नहीं है जैसा कि गणेशक्रियादिकमें है। यह अभ्यास गुरुके सामने करना उत्तम है।

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः ।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्ध्यति ॥

---

१ क्रियादिकोंका भेद देखना हो तो घेरंडसंहिता देखिये।

धोती आदि षट्कर्मके करनेसे स्थूलता, कफादिक मलविकार जिस पुरुषके दूर होगये हों वह प्राणायामका अभ्यास करे तो अनायास अर्थात् थोडे परिश्रमसे प्राणायाम सिद्ध होता है। यदि षट्कर्मोंको न करके प्राणायामहीका अभ्यास करे तो बहुत परिश्रम करनेसे प्राणायाम सिद्ध होताहै एतदर्थ क्रियाओंको अवश्य करना चाहिये।

प्राणायामप्रकार।

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।

आसनमें स्थित होकर श्वास(पूरक) तथा प्रश्वासों (रेचक) की गतिका रोकना प्राणायाम है। इसमें दीर्घ और सूक्ष्म करके दो भेद हैं अर्थात् प्रथमारंभमें प्राणवायुकी चलनेकी गति विशेष रहती है जब साधक पूरक कुंभक और रेचकके क्रमसे अभ्यास करता हुआ शुद्ध कुंभकको साध्य करता है तब प्राणवायुकी गति सूक्ष्म होजाती है और अज्ञानरूपी मलका नाश होकर शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है और यही समाधिका अधिकारी है।

अथासने दृढे योगी वशी हितमिताशनः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत् ॥

इसके अनन्तर आसनकी दृढतासे इन्द्रियां जीती हैं जिसने और मिताहारमें तत्पर ऐसा योगी गुरुके उपदेश किये हुए मार्गसे प्राणायाम अभ्यास करे। क्योंकि विना गुरुकी शिक्षा प्राप्त किये कृतकृत्यता नहीं होती।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ॥

प्राणवायुके चलायमान होनेसे चित्तभी चलायमान होताहै और प्राणवायुके निश्चल होनेसे योगी स्थाणुत्व अर्थात् स्थिर और दीर्घ काल तक जीताहै तिससे प्राणवायुका निरोध अर्थात् प्राणायाम करे।

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥

श्वास जीतनेवाले योगीका मन थोडेही दिनमें निर्मल होजाताहै जैसे पवन और अग्निसे संतप्त सुवर्ण मलरहित (शुद्ध) होजाता है ।

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते ।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥

जबतक प्राणवायु शरीरमें स्थित है तभी तक जीवन कहाजाताहै क्योंकि देह प्राणके संयोगको ही जीवन कहते हैं और देहसे प्राण वायुका निकलना मरण कहाजाताहै इससे जीवनके लिये प्राणवायुका निरोध करे ।

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निराकुलम् ।
यावद् दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः ॥

जबतक प्राणवायु शरीरमें बद्ध (रुका) और चित्त विक्षेप रहित व सावधान है और दृष्टि भ्रूके मध्यमें अन्तःकरणकी वृत्ति है तावत्काल पर्यन्त कालसे किस प्रकार भय हो सकता है अर्थात् नहीं होता ।

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा ।
साध्यते न स केनापि योगी युक्तः समाधिना ॥

योगीको कोई खा नहीं सकता है न कोई कर्म बांध सकता न कोई उसे साध सकता जो योगी समाधिसे युक्त है । यह सब गुण प्राणायाममें ही हैं जो पुरुष शुद्धतासे प्राणायाम करताहै उसकी वायु स्थिरताको प्राप्त होतीहै स्थिरतासे चित्त अवलंबन होताहै चित्तकी एकाग्रतासे समाधि होती है और समाधि ही भुक्ति मुक्तिका स्थान है ।

कुम्भकभेद ।

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः ।

प्राणायाम आठ प्रकारका है—नाम सूर्यभेदन १, उज्जायी २, सीत्कारी ३, शीतली ४, भस्त्रिका ५, भ्रामरी ६, मूर्च्छा ७, प्लाविनी ८ ये आठ प्रकारके कुम्भक प्राणायाम जानने ।

सूर्यभेदन ।

आसने सुखदे योगी बद्धा चैवासनं ततः ।
दक्षनाड्या समाकृष्य बहिःस्थं पवनं शनैः ॥
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत् ।
ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्पवनं शनैः ॥

पद्मासन वा सिद्धासनको योगी सुखसे लगाके दहिनी नाडी (पिंगला) से बाहरके पवनको धीरे २ पूरक करके नखाग्रसे लेकर केशों पर्यन्त जबतक निरोध होय अर्थात् संपूर्ण शरीरमें पवन रुक जाय तबतक कुम्भक करे । पुनः धीरे २ वामनाडी (इडा) से रेचक करे ॥ इस सूर्यभेदन प्राणायाममें जब २ पूरक किया जायगा तब २ दहिनी नाडीसे ही किया जायगा और रेचक वामसे, यह इसका क्रम है । परन्तु धीरे धीरे वायुकी वृद्धि करे कारण कि शीघ्रता करनेसे रोगोत्पत्ति होती है, इस प्रकारका प्राणायाम मस्तकके समग्र रोग और अस्सी प्रकारके वातरोगोंको नाश करता है, उदरमें जो कृमि पड गये हों उनको नष्ट करता है ।

उज्जायी ।

मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ॥
पूर्ववत्कुम्भयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः ।
श्लेष्मदोषहरं कंठे देहानलविवर्धनम् ॥

मुहको बंद करके इडा पिंगला नाडीसे शनैः २ इस प्रकार पवनका आकर्षण (खींचे) करे जिसप्रकार वह पवन कंठसे हृदयपर्यन्त शब्द करता हुआ लगे । पुनः सूर्यभेदनके समान कुम्भक करके वाम नाडीसे रेचक धीरे २ करे । इस प्रकारके प्राणायाममें कंठसे वायु खींचना वामसे छोडना—वारंवारका भी यही क्रम है परन्तु मुखसे वायु कभी भी न छोडे, मुखसे रेचक नहीं

होता । इस प्राणायामसे कण्ठके कफदोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है शरीरके धातु रोग सब नष्ट होजाते हैं ।

सीत्कारी ।

**सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृंभिकाम् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।**

दोनों ओठोंके मध्यमें जिह्वा लगाके सीत्कार करता हुआ पूरक करे यथेष्ट कुम्भक करके दोनों नासिकासे श्वास बराबर निकालता हुआ रेचक करे । इस प्रकार कुछ काल अभ्यास करनेसे वह पुरुष कामद्रेवके सदृश होजाता है अर्थात् कांतिमान् सौन्दर्यता होजाती है, देहका बल बढता है, क्षुधा, तृषा, आलस्य नहीं लगती अन्य भी बहुत गुण हैं ।

शीतला ।

**जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुम्भसाधनम् ।
शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत्पवनं सुधीः ॥**

ओठके बाहर जिह्वाको निकाल कर पक्षीके चोंच सदृश करके धीरे २ वायुको आकर्षण (पूरक) करे पूर्ववत् सदृश कुम्भक करके दोनों नासिकाके छिद्रोंसे धीरे २ रेचक करे (छोडे) परन्तु दोनों नासिकाके छिद्रोंसे वायु बराबर निकले इस प्राणायामके करनेसे गुल्म, प्लीहा आदि रोग, ज्वर, पित्त, क्षुधा, तृषा और सर्प आदिका विष इन सबोंको शीतली प्राणायाम नष्ट करता है । गर्म (उष्ण) प्रकृतिवालेको अत्यन्त उपयोगी है। विशेष अभ्यास करनेसे बिगडा हुआ रक्त शुद्ध होजाता है।

**काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शांतये ॥
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु ॥**

कौवेकी चोंचकी तरह जीभ निकाल कर कुंडलिनीका ध्यान करता हुआ दोनों संध्याओं (प्रातः सायं) में जो वायु पान करता है उसका

क्षयरोग नाश होजाता है । दूरका शब्द सुनाई देता है दूरकी वस्तु देख पडतीहै और सूक्ष्म दर्शन होता है ।

भस्त्रिका ।

सम्यक् पद्मासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरं सुधीः ।
मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत् ॥
यथा लगति हृत्कण्ठे कपालावधि सस्वनम् ।
वेगेन पूरयेच्चापि हृत्पद्मावधि मारुतम् ॥
पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनःपुनः ।
यथैव लोहकारेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते ॥
तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं धिया ।
यदा श्रमो भवेद्देहे तदा सूर्येण पूरयेत् ॥
विधिवत्कुंभकं कृत्वा रेचयेदिडयानिलम् ।
वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥

सुखपूर्वक पद्मासन लगाकर जिसमें ग्रीवा उदर बराबर हों बुद्धिमान् पुरुष मुखको बन्द करके नासिकाके द्वारा पूरक रेचकको करे, पूरक रेचक इस प्रकारके वेगसे शब्द सहित करे कि हृदय, कंठ, कपाल (ललाट–मस्तक–शिर) पर्यन्त लगे और हृदयके कमल पर्यन्त वायुका पूरक वारंवार करे । इसी प्रकार प्राण वायुको वारंवार वेगसे पूरक रेचक करे जैसे लोहकार भस्त्रा (धोंकनी) को चलाताहै तैसे पवनको शरीरमें बुद्धिसे चलावे जब शरीरमें श्रम (मेहनत–थकना) हो तब सूर्यनाडीसे पूरक करे विधिपूर्वक कुम्भक करके वाम नाडीसे रेचक कर पुनः वामसे पूरक, दक्षिणसे रेचक करै । इसका क्रम मतांतरसे ऐसा भी है कि, एकही नासिकाके छिद्रसे पूरक रेचक दोनों जोर २ शब्दसे करे अन्तमें इसी छिद्रसे पूरक कर यथेष्ट कुम्भक करके दूसरे छिद्रसे रेचक करै पुनः दूसरे छिद्रसे पूरक रेचक तदनुसार करके पूरक कुंभक रेचक करे ।

दूसरा प्रकार ।

एक छिद्रसे पूरक करता जावे, दूसरे छिद्रसे रेचक,श्रम होजानेपर पूरक,कुम्भक, रेचक तदनुसार लोम विलोम करे । इस भस्त्रिकाके करनेसे वात, पित्त और कफका नाश होताहै जठराग्निकी वृद्धि होती अर्थात् क्षुधा लगतीहै और सर्वोपरि गुण इसमें यह है कि कुंडलिनी जो योगकी जड (मूल) है वह जागृत होतीहै सुषुम्ना नाडी जो कफसे ढकी हुई है शुद्ध होजातीहै अर्थात् जो प्राणायामका करनेवाला भस्त्राका अभ्यास करेगा उसको अवश्य प्राणायाम सिद्ध होगा ।

शेष प्राणायाम–भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी इन तीनों कुंभकोंसे योगीका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता किन्तु कौतुक मात्र है, जिनको अवलोकन करना हो वह योगके ग्रन्थोंमें देखलें अपरंच श्रेष्ठ प्राणायाम चन्द्रसूर्य नाडीका लोम विलोम ही है इस लोम विलोम प्राणायामके करनेसे जन्मजन्मांतरके कल्मष नाश होजातेहैं ।

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः ।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥

इस प्रकारके प्राणायाम करनेसे जैसे पातकरूपी काष्ठको भस्म करनेवाला अग्नि होताहै तैसेही संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाला बडा पुल योगियोंने प्राणायामको कहाहै । इसी लोम विलोम प्राणायामके करनेसे अपान वायुका उत्थान होताहै वह अपान प्राणवायुसे मिलकर कुंडलिनीको जागृत करताहै जिसके आधार जीव ब्रह्मरन्ध्रको गमन करताहै अर्थात् इसी महामायाकी कृपासे समाधि लगतीहै और इस प्राणायामके दो भेद हैं एक पूरक रेचक कुम्भकयुक्त प्राणायाम दूसरा केवल कुम्भकका प्राणायाम, इनमें प्रथम पूरक रेचकयुक्त कुम्भकका अभ्यास करे, अनन्तर केवल कुंभकका अभ्यास करे । जब पूरक रेचकके विना कुम्भक दीर्घकाल पर्यन्त ठहरने लगे अर्थात् सुखपूर्वक यथेच्छ काल-पर्यन्त वायु रुकी रहे तब वह प्रत्याहारादिका अधिकारी होताहै और सिद्धियोंकी स्फूर्तियां (रंगत) होने लगतीहैं–चित्तमें आनन्दही आनन्द भासित होताहै । और कहाहै कि–

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥

उस केवल कुम्भक प्राणायाम करनेवालोंको तीनों लोकमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है जो इच्छानुसार वायुको धारण करता है कारण कि जब शुद्ध कुम्भक होने लगताहै तब अपान वायुका उत्थान हो कुण्डलिनीका उत्थान होताहै इस महामायाके जागृत होनेसे सुषुम्ना नाडी कफसे रहित होजातीहैं जब सुषुम्ना नाडी शुद्ध हुई तब प्रत्याहारादि सहजहीमें सिद्ध होते हैं और अभ्यास करते २ जब नाडी शुद्ध होतीहै तब बाह्य (बाहर) में ये चिह्न दर्शित होते हैं।

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले। अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडी-विशुद्धिर्हठयोगलक्षणम् ॥

शरीर दुबला (कृश) मुखमें प्रसन्नता (कांति) नादकी प्रकटता अर्थात् नादका शब्द शुद्ध सुननेमें आवे, दोनों आंखोंमें निर्मलता, रोग रहित, वीर्यका स्तम्भन और क्षुधाकी वृद्धि ये हठयोगीके चिह्न बाहरमें नाडी शुद्ध होने पर दिखाई देते हैं।

समकायः सुगन्धिश्च सुकान्तिः स्वरसाधकः।

शरीर टेढा भी हो तो सीधा होजाता है,सुगन्धि होने लगती है, कांतिमान् और वायुका साधन होजाता है।

प्राणायाम करनेका क्रम।

सूर्योदयसे पहिले उठकर शौच और दन्तधावनसे निवृत्त हो शुद्धतासे भस्म धारण कर सुखसे कोमल आसन पर बैठकर अर्थात् कुशासन मृगचर्म उसके ऊपर सुन्दर वस्त्रका आसन रखकर बैठे, तदनन्तर प्राणायामके लिये विधिपूर्वक संकल्प करके शेषजीका स्मरण करे। यथा–

मणिभ्राजत्फणसहस्रविधृतविश्वम्भरामंडलायानं-ताय नागराजाय नमः।

१ मार्कण्डेयपुराणे–"अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गंधः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम्। कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥"

और गणेश गुरु आदिका स्मरण कर सिद्धोंको नमस्कार करे यथा-

श्रीआदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबरानंद, भैरवाः ।
चौरङ्गी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, बिलेशयाः ॥
मंथानो, भैरवो, योगी सिद्धिर्बुद्धश्च, कंथडिः ।
कोरंटकः, सुरानंदः, सिद्धपादश्च, चर्पटिः ॥
कानेरी, पूज्यपादश्च, नित्यनाथो, निरञ्जनः ।
कपाली, बिन्दुनाथश्च, काकचंडीश्वराह्वयः ॥
अल्लामः, प्रभुदेवश्च, घोडा, चोली, च टिंटिणिः ।
भानुकी, नारदेवश्च, खंडः, कापालिकस्तथा ॥
इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः ।
खंडयित्वा कालदंडं ब्रह्मांडे विचरन्ति ते ॥

इन सिद्धोंको नमस्कार कर पद्मासन लगाके प्राणायाम करे परन्तु मयूरासन उग्रासनादि यह पहिलेही करलेवे, सावधान हो चित्तको एकाग्र कर शरीर सीधा करके दृष्टि भ्रूमध्यमें करे, दहिने हाथके अंगूठेसे नासिकाके दहिने छिद्रको दाबकर धीरे २ बायें छिद्रसे पूरक करे (वायुको चढावे, खींचे, आकर्षण करे) और गुदाको आकुंचन करता हुआ क्रम २ से गर्दनको झुकाता जावे। पूरकके अन्तमें डाढी (चिबुक) छातीसे लगजावे पुनः कनिष्ठिका अनामिकासे बायें छिद्रको दाबकर पूरकका चतुर्गुण (चौगुना) कुम्भक करे (स्तंभन रोके) अनन्तर अंगुष्ठको छोड धीरे २ दहिने छिद्रसे पूरकके द्विगुण (दूना) संख्याप्रमाण उस रुकी हुई श्वासको रेचक करे (छोडै) और नाभिके अधोभागको क्रम २ से दाबता जावे और गर्दनको उठाता जावे । पुनः उसी वायुको खंडित न करके उसी दक्षिण छिद्रसे पूरक कुम्भक करके बायें छिद्रसे तदनुसार रेचक करे । पुनः वामसे पूरक कुम्भक रेचकादि यथाक्रमसे वायुको न खंडित करता हुवा लोम विलोम प्रथम दिन छः वा दश प्राणायाम प्रणवध्वनिसे करे ।

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेत्त्रेधा मात्राद्वादशसंयुतः ॥

रेचक पूरक कुम्भक भेद करके प्रणवका उच्चारण होता हुआ बारह-मात्रा प्रमाण तीन प्रकारका प्राणायाम होता है। यह बारहवार प्रणवका जप करताहुआ पूरक और चतुर्गुण अर्थात् ४८ का कुम्भक २४ का रेचक जानना।

मतांतरसे-

इडया पवनं पिब षोडशभिश्चतुरोत्तरषष्टिकमौदरकम्। त्यज पिङ्गलया शनकैः शनकैर्दशभिर्दशभिर्दशभिर्व्यधिकैः ॥

इडा (वामनाडी) से सोलहवार करके पूरक, चौंसठ वारसे कुम्भक और पिंगला (दहिनी नाडी) से बत्तीस बार प्रणव करके रेचक होताहै। इसी क्रमसे करता हुआ बढाता जावे (वृद्धि करे) इसी तरह ८० अस्सी वा ८४ चौरासी तक बढावे और प्राणायाम चार काल करे। प्रथम तो सूर्य्योदयसे पहिले आरंभ करे, द्वितीय मध्याह्नमें, तृतीय अभ्यास करके तब सायंसंध्या करे और चतुर्थ अर्द्धरात्रमें यह चार काल करना चाहिये। यथा-

प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान्।
शनैरशीतिपर्यंतं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥

---

१ वायुपुराणे-" ततस्त्वापूरयेद्देहं ओंकारेण समाहितः। अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्त्वक्षरी भवेत् ॥ " मार्कण्डेयपुराणे-" निमेषोन्मेषणे मात्रा कालो लघ्वक्षरस्तथा। प्राणायामस्य संख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥" योगरहस्ये-"ओमित्येकाक्षरं मात्रां प्रवदंति मनीषिणः। तालत्रयं तथा केचिन्मात्रासंज्ञां प्रचक्षते ॥"

२ योगतत्त्वोपनिषदि-"इडया वायुमारोप्य शनैः षोडशमात्रया। कुम्भयेत्पूरितं पश्चाच्चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ रेचयेत्पिङ्गलानाड्या द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः। " देवीभागवते-" इडयाकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया। धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया। सुषुम्नामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥"

यदि कदाचित् चार काल न साध सके तो त्रिकाल वा दो काल अवश्य करे। द्वादश मात्राका प्राणायाम कनिष्ठ (छोटा) होताहै इस प्राणायामके करनेसे शरीरमें प्रस्वेद (पसीना) आताहै। चौबीस मात्राका प्राणायाम मध्यम कहाता है इससे शरीरमें कंप (घूमना–हिलना) होताहै और छत्तीस मात्राका प्राणायाम उत्तम होता है इससे वायु ब्रह्मरंध्रमें ठहरती है अर्थात् पहुँचती है। यथा–

प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः॥
कनीयसि भवेत्स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे।
उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निबन्धयेत्॥

जिसमें कुछ कम ४२ विपल काल (समय) लगे वह कनिष्ठ प्राणायाम और मध्यम प्राणायाम ८४ विपलका और उत्तम प्राणायाम १२९ विपलका होताहै, बन्धपूर्वक अर्थात् जालंधरबन्ध, मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध (यह कह आया हूं अर्थात् प्राणायामके समय प्रथम गर्दन झुकाना छातीसे लगाना यह जालन्धरबन्ध हुआ, गुदाका संकोच मूलबन्ध और रेचकमें नाभिका अधोभाग दाबना यह उड्डीयानबन्ध हुआ), सवा सौ विपल पर्यन्त प्राणायामकी स्थिरता होजाय तब प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें चला जाता है, ब्रह्मरन्ध्रमें गया प्राण जब २९ पल (१० मिनट) पर्यन्त ठहर जाय तब प्रत्याहार होताहै और जब पांच घटिका (२ घंटा) पर्यन्त ठहर जाय तब धारणा होतीहै। और जब ६० घटी (२४ घंटा) पर्यन्त ठहर जाय तब ध्यान होता है और जब प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें १२ दिन तक रुक जाय तब समाधि होतीहै।

पूरक जहांतक होसके धीरे धीरे ही करना चाहिये कदाचित् वेगसे हुआ तो कुछ दोष नहीं परन्तु रेचक तो कभी भी वेगसे न करे क्योंकि इससे बलकी

---

१ मार्कण्डेयपुराणे–"लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः। त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः॥" घेरंडसंहितायाम्–"अधमाज्जायते घर्मो मेरुकं पंच मध्यमात्। उत्तमाद्धै भूमित्यागास्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम्॥"

हानि होतीहै और रोग भी उत्पन्न होजाते हैं यदि कुम्भक प्रयत्नसे स्थिर किया जाय तो बहुत गुण और बल देताहै और शिथिल होनेसे अल्पगुण अर्थात् उपाधि करताहै इस वास्ते प्राणायाम करनेमें शीघ्रता न करे। यथा–

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्॥

जैसे जंगलके पशु सिंह, हाथी, बाघ आदि धीरे २ सेवा करनेसे वश होजातेहैं तैसेही वायुकी सेवा करनेसे अर्थात् शनैः २ प्राणायाम करनेसे वायु वशीभूत हो आनन्द देताहै। और विपरीत अभ्यास अर्थात् शीघ्रता करनेसे साधककी हानि होतीहै। शुद्ध प्राणायाम करनेसे सब रोग नष्ट होजातेहैं। शरीर हलका रहताहै, बलकी वृद्धि होतीहै, देहमें अरुणता (सुर्खी) आजातीहै और मन प्रसन्न रहताहै, शीघ्रता करनेसे, मिताहारके[1] बिगडनेसे, नाना प्रकारके रोग, श्वास, खांसी, मूर्च्छा, ज्वर, पसलीमें पीडा, मन्दाग्नि, रक्तविकार और नासिकाका पर्दा भी फट जाताहै।

लोम विलोम प्राणायामके अनन्तर उज्जायी, सीत्कारी, भस्त्रिकाका अभ्यास करे परन्तु भस्त्रा पद्मासनसेही करे, प्राणायाम होजाने पर नादानुसंधान करे अर्थात् कानमें जो शब्द सुनाई देवे उसको एकाग्रचित्तसे श्रवण करे (प्राणायाम करते २ स्वयं शब्द होने लगताहै किसीको थोडे ही दिनमें और किसीको कालान्तरमें) और जब अन्न भोजन किया हुआ पचन होजाय तब प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्रमाणसे भोजन करनेवालेको छः घण्टेमें अन्न पच जाताहै।

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्॥
वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥

---

१ मिताहारं विना यस्तु योगारंभं तु कारयेत्। नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्योगो न सिद्ध्यति॥ शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदरार्द्धविवर्जितम्। भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः॥

उदरके दो भाग अन्नसे पूर्ण करे और एक भागको जलसे पूर्ण करै और चौथे भागको वायुके चलनेके लिये शेष रक्खे। परन्तु भोजन तर पदार्थ (स्निग्ध) करे जिससे शरीरमें पुष्टता हो और किसी प्रकारका विकार न करे, भोजनके अनन्तर योगशास्त्रका अवलोकन करना चाहिये, इससे चित्त दूसरी ओर नहीं जाता क्योंकि कार्यकी सिद्धि तभी होतीहै जब अहर्निश (रात्रि दिन) एकही वस्तु पर लक्ष्य रहे, भोजनके पश्चात् इलायची लौंगका सेवन करे। यदि तांबूल खानेकी इच्छा हो तो चूना रहित खावे। लवणको योगी अवश्य त्याग करे और प्राणायाम वहां करना चाहिये जहां किसी प्रकारका कर्णमें शब्द सुनाई न दे इसलिये कर्णमुद्रा भी बना लेवे अर्थात् कोमल कपडेमें कपास (तूल–रुई) रखकर कानके छिद्रमें कुछ चला जाय (प्रवेश) कुछ रह जाय ऐसा बनाके उसको डोरासे (सूतकी पतली रस्सी–रज्जु) बांध लेवे। प्राणायाम करते समय कानोंमें छोड लेवे इससे शब्दकी रुकावट रहती है, प्राणायाम करते समयमें जो कोई अचानक (एकाएकी) आके जोरसे बोलने लगे वा लडने लगे तो उस समय जीधडक (घबराना–व्याकुलता) उठती है बल्कि प्राण निकलनेका भय रहताहै इसलिये शब्दको अवश्य बचावे (ये सब नियम जो प्राणायाम विशेष करते हैं अर्थात् समाधि–राजयोगके अपेक्षित हैं उनके लिये हैं) और जब उत्तम प्राणायाम करनेकी विशेष सामर्थ्य होजातीहै अर्थात् कुम्भककी स्थिरता होने लगती है उस समयमें अपान वायुका उद्गार (उत्थान) होता है। अपानका उत्थान (उठना) होनेसे आसन भी ऊपरको उठता है अर्थात् पृथ्वीको छोड देताहै, इस करके योगी पद्मासनका अभ्यास करे क्योंकि पद्मासन छूटता नहीं दूसरे प्रकारका आसन उठनेसे छूट जाता है, आसन छूट जानेपर चोट लग जाती है गिर पडता है, मूर्च्छा आजातीहै, प्राण निकलनेका भय रहता है, परन्तु यह प्रसंग तब होगा जब अच्छे प्रकारसे ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करेगा अर्थात् इन्द्रियोंकी एकाग्रता और वीर्यपात न होना यही ब्रह्मचर्यका सारांश है, जिस पुरुषका स्वप्नमें भी वीर्यपात न होगा और मिताहार युक्त प्राणायाम करता रहेगा उसको गुरु कृपासे अवश्य प्राणायाम सिद्ध होजायगा अर्थात् समाधि लगेगी, यह निश्चय है। प्राणायाम करते समय शरीर टेढा (बांका--झुका-हुआ) न करे

और प्राणायाम करनेके अनन्तर जहां तक कि वायुकी स्थिरता न होजाय तहांतक बोले नहीं, अभ्यास करते समय पूरक कुम्भक रेचककी गिनती (संख्या) न भूले और जो प्राणायाममें पसीना (प्रस्वेद) आवे तो प्राणायामके अनन्तर उस प्रस्वेदको मर्दन करे इससे शरीर हलका हो जाता है। यथा–

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत्।
दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते॥ इति॥

मुद्राप्रकरण।

अब मुद्राओंको लिखताहूं इन मुद्राओंके करनेसे योगीको शीघ्र समाधिकी प्राप्ति होतीहै और सिद्धियोंका अनुभव होने लगता है अन्य भी बहुत गुण हैं विशेष करके कुंडलिनीके उठानेका प्रयोजन है क्योंकि कुंडलिनी ही योगका सारभूत है जहांतक इसका उत्थान नहीं होता तहां तक समाधि नहीं हो सकती है।

मुद्राओंके नाम।

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डयानं मूलबन्धश्च बन्धो जालन्धराभिधः॥

---

१ यह प्राणायामका क्रम जो कहा गया है वह शास्त्रोक्त है, परन्तु महात्मा (अभ्यासी लोग इसको बहिरंग कहते हैं, अंतरंग ऐसा है कि कंठद्वारा भीतरका भीतरही पूरक कुंभक रेचक करना। इसमें संख्या करना नहीं पडता। यह अंतरंग विषय लिखने लायक नहीं है, यह सद्गुरुके समीप अच्छी तरह समझके अभ्यास करना चाहिये। कई साधु जन इसी प्रक्रियाको करते हैं। इस अंतरंग क्रियाका यदि कोई सत्पुरुष पूर्ण अधिकारी मिल जाय तो उसके पास अभ्यास करनेसे शीघ्र कार्य होता है, परन्तु प्रथम जब आपही सात्त्विकवृत्तिसे अधिकारी होगा तब वह भी मिल जायँगे। बहिरंग जो प्राणायाम कहागयाहै उसमें कुछ विघ्न नहीं है जो कार्य धैर्य्यसे देरमें होताहै वह पुष्ट होताहै और कोई महात्मा पूरक रेचक ही को बढाते हैं और कोई कुंभककी जगह रेचकही बढाते हैं ऐसे और कई एक महात्माओंके भेद हैं।

करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम् ।
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम् ॥

१ महामुद्रा, २ महाबन्ध, ३ महावेध, ४ खेचरी, ५ उड्डीयान, ६ मूलबन्ध, ७ जालन्धरबन्ध, ८ विपरीत करणी, ९ वज्रोली और १० शक्तिचालन ये उक्त दशमुद्रा वृद्ध अवस्था और मरणको नष्ट करती हैं । आगे इनके भेद लिखता हूं ।

महामुद्रा ।

पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीडच्य दक्षिणम् ।
प्रसारितं पदं कृत्वा कराभ्यां धारयेद्दृढम् ॥
कण्ठे बन्धं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः ॥
यथा दण्डहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते ॥

बायें पांवकी एंडी (पार्ष्णि) से गुदा और लिङ्गके मध्यभागको अच्छी तरहसे दबावे और दहिने पाँवको सीधा फैला करके अंगूठेको दोनों हाथकी तर्जनी (अंगूठेके पासकी अंगुली) से दृढ (जोरसे) पकडे और कण्ठमें जालन्धरबन्ध [आगे लिखूंगा] करके वायुको ऊपरही धारण करे (रोके) इस प्रकार अभ्यास करनेसे जैसे सर्प दंडके मारनेसे सीधा होजाताहै ऐसे ही कुण्डलिनी जो मूलाधारमें साढे तीन आवेष्टन करके स्वयम्भूलिंगमें वेष्टित (लिपटी हुइ) है वह जागृत होतीहै अर्थात् वेष्टनको छोड सीधी होतीहै । तब इडा, पिंगला दोनों नाडियोंका प्रवाह बन्द होजाता है कारण कि कुण्डलिनीके उत्थानसे प्राण सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करता है ।

ततः शनैःशनैरेव रेचयेन्नैव वेगतः
महामुद्रां च तेनैव वदंति विबुधोत्तमाः ॥

वह ऊपर धारण कीहुई वायुको धीरे २ रेचन करे (छोडे) वेगसे नहीं क्योंकि शीघ्र छोडनेसे बलकी हानि होतीहै इससे ही देवताओमें उत्तम इसको महामुद्रा कहतेहैं । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पांचों महा

क्लेश इस मुद्राके करनेसे नष्ट होजाते हैं अर्थात् महाक्लेशोंके नष्ट करनेसें ही इसका देवताओंने महामुद्रा नाम रक्खा है]

चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्यांगे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥

इस प्रकार चन्द्रांग (वामभाग) का अभ्यास करके सूर्यांग (दक्षिणभाग) का अभ्यास करे और जितना काल चन्द्रांगमें लगे उतनाही काल सूर्यांगमें लगाना चाहिये । चन्द्रांग, सूर्यांगका भेद ऐसा है कि वामपादका मूल योनिमें दाबना, दहिना फैलाना, अंगूठेको तर्जनियोंसे पकडना इत्यादि यह चन्द्रांग है। दक्षिण पादका मूल योनिमें दाबना और वामपाद फैलाना इत्यादि सूर्यांग है। इस प्रकार अभ्यास करनेवालेके गुदा और उदरके सब रोग नष्ट होते हैं ।

एडी बांधी

महाबन्ध ।

पार्ष्णि वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।
वामोरूपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा ॥
पूरयित्वा ततो वायुं हृदयं चिबुकं दृढम् ।
निष्पीडच वायुमाकुञ्च्य मनोमध्ये नियोजयेत ॥

बायें पादकी एंडीको योनिस्थान (गुदा लिंगका मध्यभाग) में लगावे और वाम जंघाके ऊपर दक्षिण पादको रखकर बैठे । अनन्तर वायुको पूरण करके हृदयमें डाढी दृढतासे लगावे और योनि स्थानको आकुंचन (संकोच) करके मनको मध्य नाडीके विषे प्रवेश करे ।

धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदनिलं शनैः ।
सव्याङ्गे तु समभ्यस्य दक्षाङ्गे पुनरभ्यसेत् ॥

पुनः उस पूर्ण कीहुई वायुंको यथाशक्ति धारण करके धीरे २ वायुको रेचन करे इसप्रकार वाम अंगमें अच्छी तरह अभ्यास करके दक्षिणांगमें अभ्यास करे परन्तु जितना वाम भागमें अभ्यास करे उतनाही दक्षिणांगमें करे । इस

मुद्राके अभ्याससे इडा पिंगला और सुषुम्नाका संगम भ्रूमध्यमें होता है जहां शिवजीका स्थानरूप केदार है-वहांसे ब्रह्मरंध्रको जाना होता है ।

महावेध ।

महावंधको करके अर्थात् वामपादकी एंडी योनिस्थानमें और वामजंघाके ऊपर दक्षिण पादको रख कर वायुको पूरक करके डाढी (चिबुक) हृदयमें लगावे । तदनन्तर—

समहस्तयुगौ भूमौ स्फिचौ सन्ताडयेच्छनैः ।
पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः ॥

दोनों हाथोंके तलको भूमिमें अच्छीतरह स्थापित करके स्फिच (चूतड-नितम्ब) को उठावे और छोडे ऐसा धीरे २ अभ्यास करनेसे प्राणवायु इडा पिंगलाको छोड सुषुम्नामें प्रवेश करती है । विना इस वेधके किये महामुद्रा, महावंधका फल निष्फल है इसलिये इसको अवश्य करना चाहिये परन्तु इसको प्रहर २ में करना उचित है । इस मुद्राके अभ्याससे-

चक्रमध्यस्थिता देवाः कम्पन्ते वायुताडनात ।
कुण्डल्यपि महामाया कैलासे सा विलीयते ॥

शरीरस्थ चक्रमें जो गणेशादि देवता हैं वह इस वायुके ताडनसे कम्पित होते अर्थात् चक्ररंध्र (षट्चक्रोंका छिद्र जिस मार्गसे जीव ब्रह्मरंध्रको जाता है यह जीव वायुरूपही है) को छोड देते हैं तब वायुका प्रवेश होता है और कुंडलिनी ब्रह्मस्थानमें लय होती है इससे इसको अवश्य करना चाहिये और वृद्ध अवस्थामें चर्मका सिकुडना, बालोंका श्वेतपना (सफेदी) और शिरका हिलना ये सब नष्ट होजाते हैं और समग्र पापका पुंज [समूह] दहन होजाता है ।

खेचरी ।

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥

कपालके मध्यमें जो छिद्र है उसमें उलटी हुई जिह्वाका प्रवेश होजाय और भ्रुकुटिके मध्यमें दृष्टिका प्रवेश हो जाय तो वह खेचरी मुद्रा होतीहै अर्थात् जिह्वाको कपाल छिद्रमें लगाके भ्रूमध्यका अवलोकन खेचरी मुद्रा होतीहै। इस मुद्राका अभ्यासी पुरुष प्रथम जिह्वाको बढावे अर्थात् जब प्रातःकाल दंतधावन करचुके पश्चात् जिह्वाके अग्रको दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे धीरे २ दुहे जैसे गौ दुही जाती है। और वाम दक्षिण भागमें हिलावे और सेंहुड (स्नुहीपत्र) के पत्तेकी तरह शस्त्र [पत्तेकी तरह लोहेका हथियार] बनवाकर आठवें २ दिन जिह्वाके नीचे शिराको बाल (केश) प्रमाण छेदन करे और सैंधव, हरडे (हरीतकी) के चूर्णको उसी शिरामें लगाया करे–(कोई छेदन नहीं करते हैं योंही औषधियोंसे बढाते हैं इस प्रकार करनेसे छः महीनेमें जिह्वा बढकर उपयोगमें आने लगती है अर्थात् तालुमूलमें जो छिद्र है जिससे अमृत झरा करता है वहां जिह्वा लगानेसे जिह्वामें अमृत आने लगताहै, विना जिह्वा बढाये (वर्धन) तालुमूलमें नहीं पहुंच सकती। परीक्षा यह है कि जब अपनी नासिकामें जिह्वा निकालके लगानेसे सुखपूर्वक स्पर्श करे तब जिह्वा छिद्रमें अवश्य पहुंचेगी। तब जिह्वाको उलट करके उस तालुमूलमें जहां इडा, पिंगला और सुषुम्नाके तीन छिद्र हैं (मतांतरसे पांच छिद्र हैं) तहां लगावे, जिह्वाके अग्रसे घर्षण (घिसे) करता रहे, तब उस सुषुम्नाके छिद्रसे जो अमृत झरा करताहै वह प्राप्त होगा। प्रथम अभ्यासमें उसका स्वाद–

सक्षारा कटुकाम्लदुग्धसदृशी मध्वाज्यतुल्या तथा।

क्षार पुनः कटु (मिर्चकी तरह) पुनः अम्ल (खट्टा) पुनः दूधकी तरह स्वाद पश्चात् मधु (सहत) अनन्तर घृतकी तरह स्वाद मिलने लगताहै, जब घृतका स्वाद आने लगा तब जानना चाहिये कि खेचरीमुद्रा सिद्ध होगई। जब खेचरीमुद्रा सिद्ध होगई हो तो–

न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥

पीडयते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥

उसको रोग मरण और अन्तःकरणकी तमोगुणी वृत्तिरूप तन्द्रा और निद्रा क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास) और चित्तकी तमोगुणी अवस्था रूप मूर्च्छा रोग ये सब नहीं होते, वह रोगसे पीडित नहीं होता, न कर्मसे लिप्त होता और न कालसे बांधा जाता है । अपरञ्च इस मुद्राका बडा माहात्म्य हैं इससे अधिक माहात्म्य किसीका भी नहीं है । इस मुद्राके सिद्ध होनेसे सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है वह केवल इसी मुद्राके अभ्याससे ही जीवन्मुक्त होताहै, उसके शरीरपर कांति सदा बनी रहतीहै, शोकको नहीं प्राप्त होता, सर्पादिकका विष नहीं प्रवेश करताहै (विशेष देखना हो तो योगके ग्रन्थोंको अवलोकन करो)।

उड्डीयान ।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥

पेटमें नाभिके ऊपर भागको और निचले भागको इस प्रकार तान (आकर्षण) करे कि जिसमें वे दोनों भाग पृष्ठमें लग जायँ यह नाभिके ऊर्ध्व अधोभागका तान उड्डीयान नामका बन्ध होता है और यह बन्ध मृत्युरूप हस्तीका सिंहरूप नाशक है ।

मूलबन्ध ।

पार्ष्णिभागेन सम्पीडय योनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते ॥

एंडीसे योनिस्थानको अच्छी तरहसे दबाकर गुदाका संकोच करे और अपान वायुको ऊपरको आकर्षण करे यह मूलबन्ध कहाता है । दूसरा प्रकार–ऐसा है कि वामपादकी एंडीको योनिस्थानमें दृढतासे लगाके दक्षिणपादकी एंडीको लिंगके ऊपर लगावे । तीसरा–वामपादकी एंडीको गुदामें दृढतासे

लगाके दहिने पांवकी एंडीको लिङ्ग और वृषणके वीचमें लगावे इसको मूलबंध कहतेहैं। इस मुद्राका बारम्बार अभ्यास करनेसे अपानवायुका उत्थान होता है, अधोगामी अपान जब ऊर्ध्वगामी होकर अग्निमंडलमें पहुंच जाता है उस समय अपान वायुसे ताडित कीहुई जो त्रिकोणाकार नाभिके नीचे जठराग्निकी शिखा [ज्वाला] है वह बढ जाती है। तब अग्नि और अपान ये दोनों बढी हुई ज्वालासे ऊर्ध्वगतिसे प्राणमें पहुंच जाते हैं। तिस प्राणवायुके समागमसे देहमें उत्पन्न हुई जठराग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होजातीहै उस अग्निके अत्यन्त दीपनसे भली प्रकार तप्यमान हुई कुंडलिनी शक्ति सुखपूर्वक जागृत होजातीहै, अनन्तर सुषुम्ना नाडीके मध्यमें संचार करती है, सुषुम्नाके मध्यमें कुंडलिनीका संचार यही समाधिका लक्षण है इस करके मूलबंधका करना अत्यन्त उपयोगी है, परन्तु इसमें यथार्थ अभ्यास न करनेसे रोग भी होताहै। परीक्षा यह है कि मल बकरी (अजा) की तरह होने लगे तब जानना चाहिये कि मूलबंध ठीक नहीं करते बना और जब मल बराबर हो क्षुधा लगती जाय, शरीर हलका बना रहे, मन प्रसन्न रहा करे तब ठीक जानना। समग्र योगके कामोंमें शीघ्रता न करे शीघ्रताही रोगका मूल है।

जालंधरबन्ध।

कण्ठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम्।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः॥

कंठके बिल [छिद्र] का संकोच करके चार अंगुलके अन्तर पर हृदयके समीपमें डाढीको दृढतासे स्थापन करै वह जालंधरबंध कहाता है। यह बंध वृद्धावस्था और मृत्युका नाश करनेवाला है। इस बंधके करनेसे जो चन्द्रामृत झरताहै उसकी नाभिमें जो जठराग्नि स्थित है वह ग्रहण करलेती है तब वह रुक जाता है और वायुका कोप नहीं होता अर्थात् अन्य नाडियोंमें वायुका गमन नहीं होता और केवल इसही बंधका अभ्यास करनेसे समाधि भी होती है परन्तु इसमें गुरु लक्ष्यका काम है, ये तीनों अर्थात् उड्डीयानबंध, मूलबंध और जालंधरबन्ध योगाभ्यासीके वास्ते बडे उपयोगी हैं, मुख्य काम इन्हींसे होता है।

विपरीतकरणी।

भूतले स्वशिरो दत्त्वा खे नयेच्चरणद्वयम् ।
विपरीतकृता चैषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

साधक अपने शिरको भूमिमें स्थापित करके दोनों चरणोंको ऊपर आकाशमें निरालम्ब स्थिर करे, यह विपरीत करणी मुद्रा सब तंत्रोंमें छिपी हुई है (अर्थात् प्रकाश नहीं करे तो योगी मृत्युको जीत लेता है)--इसमें भी अमृतकी धारा रुक जातीहै और क्षुधाकी वृद्धि अधिक होती है, इस मुद्राका अभ्यासी घृत-दुग्ध अच्छी तरह सेवन करे और प्रातःकाल ही अभ्यास करे, इससे बालोंका पकना और वृद्धापन दूर होता है।

वज्रोली।

स्वेच्छया वर्तमानोऽपि योगोक्तैर्नियमैर्विना ।
वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनम् ॥
तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित् ।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी ॥
यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे ।
शनैःशनैः प्रकुर्वीत वायुं संचारकारणात् ॥

जो योगाभ्यासी वज्रोली मुद्राको अपने अनुभवसे जानताहै वह योगी योगशास्त्रमें कहे हुए नियमोंके विना अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करता हुआ भी अणिमा आदि सिद्धियोंका भोक्ता है। उस वज्रोलीकी सिद्धिमें जिस किसी निर्धन पुरुषको दुर्लभ जो दो वस्तु हैं उनको मैं कहता हूं, उन दोनोंमें एक दूध है और दूसरी वशमें रहनेवाली स्त्री है। लिङ्गके छिद्रमें वायुके संचार करनेके लिये उत्तम नालसे धीरे २ यत्न पूर्वक फूत्कारको करै।

वज्रोलीका क्रम ऐसा है कि, सीसेकी शलाई (शलाका) लिंगमें प्रवेश करनेके योग्य चौदह अंगुलकी बनवाकर लिंगमें प्रवेश करनेका अभ्यास करे। पहिले दिन एक अंगुल, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन अंगुल प्रवेश करे इसी

क्रमसे वृद्धि करता हुआ बारह अंगुल तक प्रवेश करे इतनेमें मार्ग शुद्ध होजाता है। पुनः उसी प्रकारकी चौदह अंगुलकी ऐसी सलाई बनवावे जो दो अंगुल टेढी हो और ऊर्ध्वमुखी हो परन्तु यह शलाका पोली रहे इसको भी बारह अंगुल लिंगके छिद्रमें प्रवेश करै, टेढा और ऊर्ध्वमुख जो दो अंगुल मात्र है उसको बाहर रक्खे। पुनः सुनारके अग्निधमनी [धौंकनी] के नालकी तरह नालको लेकर उस नालके अग्रभागको लिंगमें प्रवेश किये बारह अंगुलके नालका टेढा और ऊर्ध्वमुख जो दो अंगुल है उसके मध्यमें प्रवेश करके फूत्कार करै (फूंकै) तिससे अच्छी तरह लिंगके मार्गकी शुद्धि होती है। तब वायुके खींचने छोडनेका अभ्यास करे। पुनः लिंगसे जल आकर्षण करनेका अभ्यास करे जलके आकर्षणकी सिद्धि होनेपर दूधके खींचनेका अभ्यास करे, दूध सिद्ध होने पर तैलका अभ्यास करे; यह सिद्ध होने पर पारद (पारा) के खींचनेका अभ्यास करे। जब पारदको शुद्ध रीतिसे आकर्षण करनेकी शक्ति होगई तब—

नारीभगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥

नारीके भगमें पडते (गिरते) हुए बिन्दु (वीर्य) के अभ्याससे ऊपरको आकर्षण करे अर्थात् पडनेसे पूर्व ही ऊपरको खींच ले। यदि पतन (गिरना) से पूर्व बिन्दुका आकर्षण न होसके तो पतित हुआ बिन्दुका आकर्षण करे। चलित हुआ अपना बिन्दु और स्त्रीका रज इन दोनोंका आकर्षण ऊपरको करके रक्षा करे। अभिप्राय यह है कि, स्त्रीसे भोग करते समय अपने वीर्यको आकर्षण किये रहे जब स्त्रीका रज पतित होनेको हो तभी अभ्याससे रजको खींच ले यदि अपना ही बिन्दु गिरनेको हो तो तात्कालिक ही अपानवायुको उत्थान करके आकर्षण शक्तिसे ऊपरको आकर्षण करले जिस योगीका अभ्यास सिद्ध होजाय तो वह पुरुष सब सिद्धियोंका अधिकारी होजाता है और दीर्घसे दीर्घ काल पर्यन्त जीता रहता है। यदि इसका अभ्यास शाक्त लोग करें तो बहुत ही उत्तम है क्योंकि यह भोगसे ही मुक्ति कहते हैं।

एवं संरक्षयेद्बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित् ।
मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ॥

जो योगी बिन्दुकी भली प्रकार रक्षा करता है वह योगका ज्ञाता योगी मृत्युको जीतता है क्योंकि बिन्दुके पतनसे ही मरण और बिन्दुकी रक्षासे ही जीवन होता है इससे बिन्दुकी रक्षा अवश्य करनी चाहियें परन्तु वर्तमान कालमें सब लोगोंने बिन्दुपात (वीर्य गिराना, कामदेव) करनाही श्रेष्ठ समझा है यह कैसी भूल है ।

शक्तिचालन ।

कुटिलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी ।
कुण्डल्यरुन्धती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥
उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥

१ कुटिलांगी, २ कुण्डलिनी, ३ भुजंगी, ४ शक्ति, ५ ईश्वरी, ६ कुण्डली, ७ अरुन्धती ये सात शब्द पर्यायवाचक है। जैसे पुरुष किवाडोंके तालाको बल करके कुंजी (ताली–चाभी) से खोलते हैं तिसी प्रकार योगी भी हठ-योगके अभ्याससे कुंडलिनी मुद्राके द्वारसे अर्थात् मोक्षके दाता सुषुम्नाके मार्गको भेदन करता है। यह कुण्डलिनी मूलाधारसे ऊपर योनिस्थान जिसका पीछे मुख है उसी स्थानमें कन्द (लिंग इन्द्रियसे थोडा ऊपर) है उसी स्थानमें सर्पाकार सोती है इसको साधक भली प्रकार यत्न करके उत्थान (उठावे) करे ।

सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दृढम् ।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् ॥

वज्रासन लगाके अनन्तर गुल्फोंके कुछेक ऊपर भागमें चरणोंको हाथोंसे दृढ पकड कर नाभिके अधोभागमें कन्दको पीडित करे अर्थात् नाभिके अधो-भागमें एडीकी चोट धीरे २ लगावे अनन्तर उसी वज्रासन (सिद्धासन) से

स्थित हो भस्त्राको करे इससे कुण्डलिनी जागृत होती है, प्रातः और सायंकालमें आधा २ प्रहर इस क्रमसे अभ्यास करनेसे ४४ चवालिसवें दिनमें कुण्डलिनीका उत्थान होताहै परन्तु साधक मिताहार साधन—ब्रह्मचर्यव्रत परित्याग न करे। यह शक्तिका उत्थान प्राणायाम करते २ जब अपान वायुका उत्थान होताहै तब यह ईश्वरी आपही उठतीहै। (इसका उपाय महात्माओंके पास कुछ भिन्न ही रहताहै परन्तु संकेतवश नहीं लिखा गया) यह कुंडलिनी मूलाधारमें जो स्वयम्भूलिंगहै उस लिङ्गमें साढे तीन आवेष्टन करके लिपटी हुई है और जहाँ उसका मुख है वहीं ब्रह्मरन्ध्रका छिद्र है बिना इसके उठे योगकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि यह ईश्वरी ही योगका मूल है।

येन संचालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम् ॥

जिस योगीने शक्ति चलायमान करली है वह योगी अणिमादि सिद्धियोंका पात्र होजाताहै। इसका उत्थान होनेसे ७२००० बहत्तर सहस्र नाडियोंका मल शुद्ध होताहै, जो पुरुष इस महामायाके भेदको जानताहै वह सिद्धपुरुष कहाता है इसमें सन्देह नहीं, यह कुण्डलिनी कमलनालके तन्तु (सूत) सदृश है और अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाशसे युक्त है इसके उत्थान होनेसे शरीर हलका मालूम होता है कुछ नशासा बना रहता है। इसके उठानेका उपाय प्राणायाम और मुद्रा है अथवा भावना किया करै, भावना करते २ अनुभव होने लगताहै, परन्तु इसकी समझ सद्गुरुके समीपसे ही ठीक होती है। यहां इन दश मुद्राओंका कथन मैंने संक्षेपसे कियाहै जिनको विशेष देखना हो वह योगके ग्रन्थोंको देखैं।

प्रत्याहार।

पतञ्जलिः--स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥

विषयोंसे चित्तके निवृत्त होनेमें जैसा चित्तका स्वरूप होता हैं वैसाही इन्द्रियोंकी एकाग्रता होना प्रत्याहार है।

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् ।
यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥

**यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम् ।
तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा ॥**

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श ये पांच विषय हैं इनमें घ्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, कर्ण इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंके कर्म होते हैं अर्थात् उक्त ज्ञानेन्द्रियोंके उक्त विषय क्रमसे हैं, आसन और प्राणायाम सिद्ध करके जिस इन्द्रियका जो विषय है उसे दूसरेके समीप भावना कर क्रमशः धीरे २ त्याग करना अर्थात् इन्द्रियसे उसके विषयका अनुभव करके पुनः इन्द्रियोंको विषयसे अलग करना प्रत्याहार होताहै । दिनके प्रातः, मध्याह्न, सायं इन तीन भागोंसे तीन काल होते हैं, जैसे सायंकालमें सूर्य अपनी कांतिको क्रमसे हरण करताहै ऐसेही योगीभी तीसरे अंग (१ आसन, २ प्राणायाम, ३ प्रत्याहार) प्रत्याहारमें मानस विकारमें मनको विषय सम्बन्धसे छुटावे ।

**अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः सङ्कोचयेद्ध्रुवम् ।
योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥**

जसे कछुआ अपने शिर पैर आदि अङ्गोंको संकोच कर अपने ही भीतर छिपा लेताहै ऐसेही योगी भी इन्द्रियोंको विषयोंसे रोक कर आत्मामें उनकी वृत्तियोंको आसक्त करे । वायुके २९ पल अर्थात् १० मिनट तक निर्विघ्न ठहरनेको प्रत्याहार कहतेहैं । जब वायु निर्विघ्न ठहरतीहै तब चित्त किसी प्रकारसे चलायमान नहीं होता, यह निश्चय है और दूसरेके देखनेसे वा अपने ही देखनेसे बाहरमें ऐसा मालूम होताहै कि वायु नहीं है अर्थात् पेट (उदर) किंचित् भी फूलता पचकता नहीं जब इतना अधिकार होगया तब जानना चाहिये कि अब वायु ऊपरको गमन करेगी परन्तु इसमें सद्गुरुका प्रयोजन है । यह क्रम १२ दिनकी समाधि लगानेका है ।

**याममात्रं यदा पूर्णं भवेदभ्यासयोगतः ।
एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगी च कुम्भकम् ॥**

दंडाष्टकं यदा वायुर्निश्चलो योगिनो भवेत्।
स्वसामर्थ्यात्तदाङ्गुष्ठं तिष्ठेद्वातुलवत्सुधीः॥

जब एक वारमें पूर्ण एक प्रहर तक योगीके अभ्याससे कुम्भक स्थिर रहेगा अर्थात् आठ घडी तक योगीका वायु निश्चल रहे तब वह अपने सामर्थ्यसे अंगुष्ठमात्रके बलसे अचल अबोधवत् खडा रह सकता है। प्रत्याहारसे यह अभिप्राय है कि, जिस पुरुषको प्रत्याहार साध्य होजायगा तो उसके चित्तकी वृत्ति स्थिर होजायगी और वायुका निरोध सुखपूर्वक होजायगा, एक प्रहर वायु स्थिर होनेसे सिद्धियोंके अनुभव होने लगतेहैं।

धारणा।

पतञ्जलिः-देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥

हृदयादि स्थानोंमें चित्तको बांधना अर्थात् पांच घडी (२ घंटा) तक एकाग्र करना धारणा कहाती है।

आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणां च समभ्यसेत्॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार इनका अभ्यास स्थिर करके धारणाका अभ्यास करे।

हृदये पञ्चभूतानां धारणा च पृथक्पृथक्।
मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते॥

हृदयमें मन, प्राणवायुको निश्चल करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश संज्ञक पंचभूतोंको अलग २ धारण करना धारणा कहातीहै।

या पृथ्वी हरितालहेमरुचिरा पीता लकारान्विता
संयुक्ता कमलासनेन हि चतुष्कोणा हृदि स्थापिनी॥
प्राणांस्तत्र विलीय पञ्चघटिकं चिन्तान्विता धारये-
देषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुर्याद्भुवो धारणा॥

जो पृथ्वी हरिताल अथवा सुवर्णके समान सुन्दर पीतवर्ण अधिष्ठातृदेवता ब्रह्मा सहित चौकोना करके बीचमें (लं) बीज युक्त है इस प्रकार पृथ्वी-तत्त्वको हृदयमें ध्यान करके भावना करे चित्त सहित प्राणोंको लीन करके पांच घटी तक स्तम्भन करनेवाली धारणा होतीहै इस धारणाका सर्वदा अभ्यास करनेसे पृथ्वीतत्त्व अपने वशमें होजाता है। एवं कुन्दपुष्पके समान श्वेतवर्ण अधिष्ठातृदेवता विष्णु सहित अर्धचन्द्राकारके मध्यमें (वं) बीज अमृतरूप जलतत्त्वको विशुद्ध चक्रमें (कंठ) ध्यान करके भावना करे। चित्त और प्राणोंको लीन करके पांच घटी पर्यन्त धारणा करना यह जल स्तम्भन करनेवाली वारुणी धारणा है इसके अभ्यास करनेसे कालकूट विष भी शरीरमें प्रवेश नहीं करता। बीरबहूटी (इन्द्रगोप) के समान रक्तवर्ण अधिष्ठातृदेवता रुद्रसहित त्रिकोणाकारके मध्यमें (रं) बीज तेजोरूप अग्नितत्त्वको तालुस्थानमें भावना करे चित्त प्राणोंको लीन करके पांच घटी पर्यन्त वैश्वानरी धारणा होतीहै इसके अभ्याससे योगी अग्निका जीतनेवाला होताहै। कज्जलके पुंज समान अतिनील वर्ण अधिष्ठातृदेवता ईश्वर सहित वर्तुलाकार (गोला) के मध्यमें (यं) बीज वायुतत्त्वको भ्रूमध्यमें भावना करे। चित्त सहित प्राणोंको लीन करके पांच घटी पर्य्यन्त वायुतत्त्वकी धारणा होती है इसके अभ्याससे योगीको आकाशमें गमनकरनेकी शक्ति होती है। निर्मल जलके समान वर्ण अधिष्ठातृदेवता सदाशिव सहित वर्तुलाकरके मध्यमें (हं) बीज आकाशतत्त्वको ब्रह्मरन्ध्रमें भावना करे, चित्त सहित प्राणोंको लीन करके पांच घटी पर्यन्त स्थिर रहना यह नभोधारणा मोक्षरूपी द्वारके खोलनेमें चतुर है इसके अभ्याससे मोक्षद्वार खुल जाताहै।

कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पञ्च दुर्लभाः ।
विहाय सततं योगी सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥

कर्म (अनुष्ठान) से मनके चिन्तनसे वचन शास्त्राज्ञाके प्रमाण माननेसे निरूपण करके पांचों धारणाओंको जो स्थिराभ्यास करता है वह समस्त दुःखोंसे निवृत्त होजाता है। धारणासे यह अभिप्राय है कि, प्रत्याहार अर्थात् १० मिनट (२९ पल) तक जब वायु स्थिर होने लगे तब

गुरुउपदेश मार्गसे वायुको ऊपर चढाना इसका नाम धारणा है और धारणा पांच घटीकी होतीहै ।

धारणा पञ्चनाडीभिर्ध्यानं च षष्टिनाडिभिः ॥

जब पांच घटी तक वायुकी स्थिरता हो तब उक्त क्रमसे भूतोंकी भावना होतीहै और इसमें बहुत प्रकारके विघ्न होते हैं अर्थात् जिस समय चित्त एकाग्र करके धारणाका अभ्यास योगी करने लगताहै तब उसी कालमें यक्षिणियां (डाकिनी) अपने रूपको दर्शित कर मोहित करतीहैं अथवा भय देतीहैं (इनका रूप अन्तरदृष्टिसे ही माऌम होताहै परन्तु योगी इनके रूपको न देखे और न भय माने) और पांच घटी तक जब वायु ठहरने लगता है तब योगीको आनन्द माऌम होताहै, सिद्धोंका दर्शन होताहै, वायुको ऊपर चढानेका मार्ग माऌम होने लगताहै, इतना अभ्यास जब दृढ होगया तब ध्यान (चक्रोंके भेदन) का अधिकारी होताहै वह ध्यान ६० घटी (२४ घं०) का होताहै ।

ध्यान ।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।

ध्येयपदार्थमें चित्तकी एकाग्रता होना ध्यान है अर्थात् शरीरमें जो षट् चक्र हैं उनमें २४ घंटे तक चित्तको ठहराना ।

स्मृत्येव सर्वचिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते ।
यश्चित्ते निर्मला चिन्ता तद्धि ध्यानं प्रचक्षते ॥

(स्मृ) यह धातु चिन्ता सामान्यवाचक है सो चित्तकी योग शास्त्रोक्त प्रकारसे निर्मल करके आत्मतत्त्वका स्मरण करना ध्यान कहाता है ।

अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरधः स्थाप्य सुखासनः ।
कुण्डलिन्या समायुक्तं ध्यात्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥

पद्मासन लगाय शरीर सीधा कर आधारादिचक्रोंमें अन्तःकरण (मन) लगाय नासिकाके अग्रमें दृष्टि वा भ्रूमध्यमें लगाके निश्चल हो कुंडलिनी सहित ध्येय वस्तुका ध्यान करना इससे योगी सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ।

आधारचक्र ।

कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसङ्गतम् ।
द्विरण्डो यत्र सिद्धोस्ति डाकिनी यत्र देवता ॥
तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता ।
तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम् ॥
यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारं विचक्षणः ।
तस्य स्याद्दार्दुरी सिद्धिर्भूमित्यागक्रमेण वै ॥
परिस्फुरत्वादि सान्तं चतुर्वर्णं चतुर्दलम् ॥

इस कमलका नाम कुल है यह सुवर्णके समान कांति और स्वयम्भूलिंगसे युक्त है उस पद्ममें द्विरण्ड नामक सिद्ध और डाकिनी अधिष्ठातृ और गणेश देवता हैं उस पद्मके मध्यमें योनि है उस योनिमें कुंडलिनीकी स्थिति है और उस कुंडलिनीके ऊपर तेजस्वरूप कामबीज भ्रमण (घूमना–फिरना) करता है जो बुद्धिमान् पुरुष इस मूलाधार पद्मका सर्वदा ध्यान करतेहैं उनको दार्दुरी वृत्ति अर्थात् मेंढककी तरह उछलना सिद्ध होता है और क्रमसे भूमिको त्यागके ऊपर उठता है यह पद्म परम प्रकाशमान व से स तक अर्थात् व श ष स इन चार वर्णोंसे चार दलोंयुक्त करके शोभितहै । इस मूलाधारके ध्यान करनेसे शरीरमें कांति, जठराग्निकी वृद्धि, आरोग्यता, मन्त्रसिद्धि इत्यादिकोंका लाभ होताहै ।

स्वाधिष्ठान चक्र ।

द्वितीयं तु सरोजञ्च लिङ्गमूले व्यवस्थितम् ।
वादि लान्तं च षड्वर्णं परिभास्वरषड्दलम् ॥
स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं शोणरूपकम् ।
वाणाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी ॥

दूसरा पद्म जो लिंगमूलमें स्थित है वह ब से ल तक अर्थात् ब भ म य र ल यह छः वर्णों करके युक्त और छः दलोंसे शोभित है इस रक्तवर्ण पद्मका नाम स्वाधिष्ठान है इस स्थानमें बाण नामक सिद्ध—राकिणी देवी अधिष्ठात्री और ब्रह्मा देवता हैं।

विविधश्चाश्रुतं शास्त्रं निःशङ्को वै वदेद्ध्रुवम् ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः ॥

अनेकों शास्त्र जो कभी श्रवण नहीं किये हों उनको भी इस पद्मके ध्यानके प्रभावसे निःसन्देह कहेगा अर्थात् स्मरणशक्ति अधिक रहेगी और सब रोगोंसे मुक्त होके आनन्दपूर्वक संसारमें विचरेगा, सिद्धियोंका अनुभव होने लगता है अन्य बहुत गुण हैं।

मणिपूरचक्र।

तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारं डादि फान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥
रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः ।
तत्रस्था लाकिनीनाम्नी देवी परमधार्मिका ॥

मणिपूरक नाम तीसरा पद्म जो नाभिस्थलमें है वह हेम (सुवर्ण) वर्ण दशदल करके शोभित है और ड से फ तक अर्थात् ड ढ ण त थ द ध न प फ यह दशवर्ण से युक्त है और उस स्थानमें सर्व मंगलदाता रुद्र नामक सिद्ध लाकिनी देवी अधिष्ठत्री और विष्णु देवता हैं।

तस्मिन्ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ।
तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरन्तरसुखावहा ॥
ईप्सितं च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ।
कालस्य वञ्चनञ्चापि परदेहप्रवेशनम् ॥

जो साधक इस मणिपूर चक्रका सदा ध्यान करता है उसको पाताल सिद्धि जो सब सुखको देनेवाली है वह प्राप्त होती है और उसका दुःख रोग विनाश

होके सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं, कालको जीतनेमें सामर्थ्य होती है और परकायप्रवेश करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

अनाहतचक्र।

हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत्।
कादिठान्तार्णसंस्थानं द्वादशारसमन्वितम्॥
अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम्।
सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता॥
एतस्मिन्सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः।
क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्ता दिव्ययोषितः॥

हृदयस्थानमें जो अनाहत नामक चतुर्थ पद्म है वह क से ठ तक अर्थात् क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ बारह वर्ण और बारह दलसे युक्त है अतिउज्ज्वल रक्तवर्णसे शोभायमान है और वह प्रसन्न स्थान वायुका बीज अर्थात् प्राणवायुका आधार है, जिस पद्ममें पिनाकी सिद्ध काकिनी देवी अधिष्ठात्री और सदाशिव देवता हैं उस हृदयस्थ पद्ममें जो ध्यान करता है उसके समीप कामसे पीडित सुन्दर स्त्री अप्सरा आदि मोहित होजाती हैं (यह विघ्न करनेवाली हैं, साधक इधर लक्ष्य कदापि नहीं देवे यदि समाधिकी इच्छा है तो)।

ज्ञानश्चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयं भवेत्।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां व्रजेत्॥

उस साधकको अपूर्व ज्ञान उत्पन्न होता है। भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालोंका ज्ञान होता है दूरका शब्द सुनाई देता है, दूरकी वस्तु दिखाई देती है और अपनी इच्छासे आकाशमें गमन करनेको समर्थ होता है, सिद्धोंके दर्शन होते हैं और अन्य भी बहुत गुण हैं।

विशुद्धचक्र।

कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पञ्चमम्।

सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वरसंयुतम् ॥
छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोऽत्र शाकिनी चाधिदेवता ॥

कंठ स्थान (गला) में जो पांचवां विशुद्ध नामक कमल है वह सुवर्णके समान कांतिसे शोभित है और अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन षोडश स्वरोंसे षोडश दल युक्त हैं, छगलांड सिद्ध शाकिनी देवी अधिष्ठात्री और जीवात्मा देवता इस स्थानमें विराजमान हैं।

ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः ।
किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धाख्ये सरोरुहे ॥
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव ॥

जो पुरुष इस चक्रका नित्य ध्यान करता है वह योगीश्वर पंडित है और इस विशुद्ध पद्ममें उस पुरुषको चारों वेद रहस्य सहित समुद्रके रत्नवत् प्रकाश होतेहैं इस चक्रके ध्यानमें बहुत गुण हैं।

आज्ञाचक्र।

आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ।
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी ॥

भ्रुकुटीके बीचमें जो आज्ञापद्म (कमल) है उसमें हं क्षं दो बीज हैं सुन्दर श्वेतवर्ण दो पत्ते हैं उस स्थानमें महाकाल नामक सिद्ध हाकिनी देवी अधिष्ठात्री और परमात्मा देवता है।

शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृम्भितम् ।
पुमान्परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति ॥
तत्र देवः परं तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणः ।
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥

उस आज्ञा पद्मके बीचमें शरदचंद्रके समान परम तेज चन्द्रबीज अर्थात् ठं बीज विराजमान है इसके ज्ञान होनेसे परमहंस पुरुषको कभी नहीं कष्ट

होता। इस परम तेजका प्रकाश सब तन्त्रों करके गोपित है इसके चिन्तन-मात्रसे अवश्य परम सिद्धि प्राप्त होती है।

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते॥
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते॥

दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें कल्याणरूप आत्माका स्थान है उस शिव या आत्मामें मन लीन होताहै अर्थात् मनकी वृत्तिका प्रवाह शिवाकार होजाता है वह तुर्यपद अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिसे परे चौथा पद जानना उस पदमें मृत्यु नहीं है।

सुषुम्ना मेरुणायातो ब्रह्मरन्ध्रं यतोऽस्ति वै।
ततश्चैषा परावृत्त्या तदाज्ञापद्मदक्षिणे॥
वामनासापुटं याति गङ्गेति परिगीयते।
तदाकारा पिङ्गलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे॥
दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै॥

सुषुम्ना नाडी मेरुदंड द्वारा जहां ब्रह्मरन्ध्र है उस स्थानमें गई है और इडा नाडी सुषुम्नाके अपर आवृतसे आज्ञाचक्रके दक्षिणभागमें होके वामनासा पुटको गई है इसको गंगा कहते हैं और इडा नाडीके समान पिंगला भी चक्रके वामभागसे दहिने नासापुटको गई है, इससे हे पार्वति ! इस पिंगलाको हमने असी कहा है अर्थात् गङ्गा और असीके मध्यमें जैसा मेरा काशी क्षेत्र है तद्वत् आज्ञाचक्रमें मेरा निवास है।

आज्ञापद्ममिदं प्रोक्तं यत्र देवो महेश्वरः।
पीठत्रयं ततश्चोर्ध्वं निरुक्तं योगचिन्तकैः॥
तद्बिन्दुनादशक्त्याख्यं भालपद्मव्यवस्थितम्॥

इस स्थानमें महेश्वर देवता है इसको आज्ञापद्म कहतेहैं। योगचिन्तक लोग कहतेहैं कि इस पद्मके ऊपर पीठत्रयकी स्थिति है अर्थात् नाद, बिंदु और शक्ति यह तीनों इस भालपद्ममें विराजमान हैं और यही त्रिवेणीसंगम कहाताहै।

इडा गंगा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां संगोऽतिदुर्लभः॥

इडा गङ्गा और पिंगला यमुना है, मध्यमें सुषुम्ना सरस्वती है यह त्रिवेणी संगम कहागया है इसका स्नान अतिदुर्लभ है।

सिताऽसिते[1] संगमे यो मनसा स्नानमाचरेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्म सनातनम्॥

इस इडा, पिंगलाके संगममें साधक मानसिक (स्नान ध्यान करना यही मानसिक स्नान है) करनेसे सब पापोंसे मुक्त होके सनातन ब्रह्ममें लय हो जाताहै।

मृत्युकाले प्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले यदा।
विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान्सदा मोक्षमवाप्नुयात्॥

मृत्युके समयमें साधक जो यह चिन्तन करै कि, मेरा शरीर त्रिवेणीके सलिल (जल) में मग्न है अर्थात् सावधान हो ध्यान करे तो उसी क्षण प्राणको त्यागके मोक्षको प्राप्त होगा, उस स्थानमें श्रीसदाशिवजी ज्योतिस्वरूप करके लिंगरूपी विराजमान हैं, जो कोई इस चक्रका ध्यान दृढ करलेवे उसको त्रैलोक्यमें कुछ दुर्लभ नहीं है यह भ्रूमध्य ही समाधिका रूप है, इसका माहात्म्य बहुत है।

चक्रोंका ध्यान २४ घण्टे (एक दिन रात्रि) तक अर्थात् इतनी देर तक वायु ठहरे उसको ध्यान कहतेहैं—(इसीको चक्रभेदन कहते हैं—) धारणाके अनन्तर गुरुमुख द्वारा जब वायु ऊपरके चक्रोंको भेदन करती हुई आज्ञाचक्रको उल्लंघन करके ब्रह्मरन्ध्रको प्राप्त होतीहै उसीको समाधि कहतेहैं वहां क्षुधा तृषादि सब नष्ट होजातीहैं।

---

१ श्रुतिः—"सिताऽसिते सरिते यत्र संगते तत्राऽप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते॥" अर्थ—जिस स्थानमें श्वेत और श्याम वर्णवाली नदियोंका संगम है वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो वहां शरीर त्यागतेहैं वे पुरुष मोक्षको प्राप्त होतेहैं।

समाधिनिरूपण ।

पतञ्जलिः-

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥

स्वरूप शून्य होनेके समान ध्यान ही मात्र प्रकाशित होना समाधि है अर्थात् ध्यानमें षट्चक्राधिदेवताका दर्शन होताहै और समाधिमें कुछ रूप नहीं दीखता आनन्दाकार रहताहै. विशेष यह है कि, षट्चक्रोंको भेदन करके ब्रह्मरन्ध्रमें चित्त १२ दिन अथवा यथाकाल पर्यन्त ठहरना ।

धारणा पंचनाडीभिर्ध्यानं च षष्टिनाडिभिः ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात् ॥

प्राणवायुके व्यापारको पांच घडी तक रोकना धारणा कहाती है ऐसे ६० घटी का ध्यान और बारह दिन रात्रिपर्यन्त प्राणवायुके रोकनेसे समाधि कहाती है ।

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥
यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते ।
तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते ॥
तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।
प्रनष्टसर्वसंकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते ॥

जैसे सैंधव लवण जलका संयोग होनेसे जलके संग एकताको प्राप्त होजाता है तिसी प्रकारसे आत्मामें धारण किया हुआ मन आत्माकार होनेसे आत्मरूपको प्राप्त हो जाताहै उसी आत्मा मनकी एकताको समाधि कहतेहैं । जब प्राणके प्रवाहकी गति और मनका भी लय होजाताहै उस समयमें हुई जो समरसता (निर्द्वन्द्वता) उसको समाधि कहतेहैं । जीवात्मा और परमात्मा इन दोनोंकी एकतारूपको ही समता कहतेहैं और उस समय नष्ट हुए हैं सम्पूर्ण संकल्प जिसमें उसको समाधि कहतेहैं । समाधिमें स्थित पुरुषको काल नहीं भक्षण करता ।

बाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना॥

जब योगी समाधिमें स्थिर होजाताहै तब उसको मृत्युका भय नहीं होता अर्थात् उस पर कालका वश नहीं चलता, पाप पुण्यरूप कर्मबन्धनोंमें लिप्त नहीं होता और कोई विषयवासनामें लगाय नहीं सकता, न कोई उसे यन्त्र मन्त्र आदिसे साध सकताहै क्योंकि उस समाधिके समय क्लेशकी निवृत्ति होतीहै।

पतञ्जलिः-ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः।

न गन्धं न रसं रूपं न च स्पर्शं न निःस्वनम्।
नात्मानं च परस्वं च योगी युक्तः समाधिना॥

समाधिमें स्थित योगीको गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पांच विषयोंका बोध नहीं होता, वह अपना पराया कुछ नहीं जानता, जीवात्मा परमात्माको एकही मानताहै अर्थात् समाधिमें जब साधक प्राप्त हुआ तब उसको आनन्द ही आनन्द भासताहै वहां द्वैतपक्ष नहीं मालूम होता अर्थात् अद्वितीय होजानेसे क्षुधा तृषादि, मानापमान सुख दुःख शीत उष्णादिक भान नहीं रहता क्योंकि ये सब बाधक द्वैतके हैं। आज्ञाचक्रसे ब्रह्मरन्ध्रमें जानेके दो मार्ग हैं वह गुरुमुखसेही प्राप्त होने योग्य हैं। अत्यन्त गुप्त होनेसे लिखना उचित नहीं समझा जाता एतदर्थ नहीं लिखा गया।

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्॥
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति।
अकुलाख्योऽविनाशी च क्षयवृद्धिविवर्जितः॥

तालुके ऊपर भागमें सुन्दर सहस्रदलका कमल है यह कमल मुक्तिका दाता ब्रह्मांडरूपी शरीरके बाहर अर्थात् शरीरके ऊपर अन्तमें स्थित (शिखाके पास) है इसी कमलको कैलास कहतेहैं इसी स्थानमें महेश्वरकी स्थिति है यह ईश्वर निराकुल, अविनाशी और क्षय वृद्धि रहित है।

तस्माद्गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरम् ।
मृत्योर्मृत्युं विधायाशु कुलं जित्वा सरोरुहे ॥
अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा ।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥

सहस्रदल कमलसे जो अमृत स्रवता (गिरता-झरता) है उसको योगी निरन्तर पान करताहै वह योगी मृत्युको जीत करके चिरंजीवी होजाताहै और यही सहस्रदल कमलमें कुलरूपा (आधार चक्रमें रहनेवाली) कुण्डलिनी शक्ति लय होजातीहै तब यह चतुर्विध सृष्टि भी परमात्मामें लय होजातीहै ।

यज्ज्ञात्वा प्राप्य विषयं चित्तवृत्तिर्विलीयते ।
तस्मिन्परिश्रमं योगी करोति निरपेक्षकः ॥

इस सहस्रदल कमलके ज्ञान होनेसे चित्तवृत्तिका लय होजाताहै अर्थात् वासनाका नाश होजाताहै इसलिये इसके ज्ञानार्थ योगी कांक्षा (कामना) रहित होके अभ्यास करे।

अभिप्राय यहहै कि, जो समाधि जिसको राजयोग कहतेहैं उसकी प्राप्त्यर्थ अवश्य परिश्रम करना चाहिये क्योंकि इसीसे सायुज्यमुक्ति और कालकी वंचना होतीहै और इसीसे ही आठ सिद्धियोंका सहजमें लाभ अवश्य होताहै । सिद्धियोंके नाम—१ अणिमा, २ महिमा, ३ गरिमा, ४ लघिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशता, ८ वशिता ये आठ सिद्धियां हैं ।

निरूपण ।

(१ अणिमा)—इच्छा होते ही परमाणुरूप होजाना, (२ महिमा) आकाशवत् स्थूल (मोटा, बडा) होना, (३ गरिमा) अघु पदार्थका भी पर्वत (पहाड) आदिके समान भारी होजाना, (४ लघिमा) पर्वतादिके समान भारी होके हलका होजाना, (५ प्राप्ति) सम्पूर्ण पदार्थोंके समीप पहुंचना जैसे कि भूमि पर स्थित योगी अंगुलीके अग्रसे चन्द्रमाका स्पर्श कर ले, (६ प्राकाम्य) जलके समान भूमिमें प्रवेश होजाय और निकल आवे, (७ ईशता)

ंचों महाभूत और उनसे उत्पन्न भौतिक पदार्थ इनको उत्पत्ति और प्रलय पालनकी सामर्थ्य हो, (८ वशिता) भौतिक पदार्थोंको अपने आधीन करना ये आठ सिद्धियां और परकायप्रवेशादि निधियोंका योगाभ्यासी इच्छानुसार आनन्दानुभव लेता हुआ त्रैलोक्यमें विचरता सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है और यदि योगकी पूर्णरीतिसे सिद्धि न हुई तो भी वह जीवन पर्यन्त मर्यादापूर्वक सुखी, रोगसे रहित, कांतियुक्त रहता है और अन्तमें स्वर्गोंका सुख भोगके पुनः वासनानुसार उत्तम कुल भाग्यवानके यहां या ऋषिवत् कुलमें जन्म ले अभ्यास करता है।

अभिप्राय यह है कि, योगका अभ्यासी किसी प्रकारसे नष्ट नहीं होता, अन्य उपासनाओंसे यह उपासना अति उत्तम श्रेयस्कर है। सकामी निष्कामी दोनोंको उपयोगी है इसका माहात्म्य वर्णन करने योग्य नहीं है। अर्थात्–

यंयं चिन्तयते कामं तंतं प्राप्नोति निश्चितम्।

इससे अवश्य इस विद्याको किसी सद्गुरुके समीप समझ करके अभ्यास करना चाहिये, इसका अभ्यास गृहस्थाश्रमी सुखसे करे परन्तु ऋतुकालाभिगामी हो। यह ब्रह्मरन्ध्रकी वंदनाको ग्रन्थोंमें बहुत प्रकारसे वर्णन किया है परन्तु मैंने विस्तार भयसे नहीं लिखा क्योंकि जो पुरुष अभ्यास करेगा उसीको आनन्द प्राप्त होगा।

नादानुसन्धान।

नादानुसन्धानसमाधिभाजां
योगीश्वराणां हृदि वर्धमानम्।
आनन्दमेकं वचसामगम्यं
जानाति तं श्रीगुरुनाथ एकः॥

अनाहत ध्वनिरूप जो नाद है उसके स्मरणसे चित्तकी एकाग्रतारूप जो समाधि है उसके कर्ता जो योगीश्वर हैं उनके हृदयमें बढताहुआ वाणीसे परे जो प्रसिद्ध मुख्य आनन्द होताहैं वह श्रीयुत गुरुस्वामी ही जानतेहैं अर्थात् यह नादानुसंधान गुरुसे ही प्राप्त होताहै।

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां यं शृणोति ध्वनिं मुनिः ।
तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिरपदं व्रजेत् ॥

योगी हाथोंके अंगूठोंको कर्णोंके छिद्रोंमें लगाकर जिस अनाहतध्वनि(शब्द) को सुनता है उस ध्वनिमें स्थिरभी चित्तको तवतक स्थिर करे जबतक तुर्यावस्थारूप स्थिरपदको प्राप्त न हो ।

विजितो भवतीह तेन वायुः
सहजो यस्य समुत्थितः प्रणादः ॥

जिस योगीके देहमें स्वाभाविक नाद भली प्रकार उठताहै वह वायुको जीत लेताहै ।

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान् ।
ततोऽभ्यासे वर्धमाने श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मकः ॥

प्रथम अभ्यासमें अनेक प्रकारका महान् नाद सुना जाताहै और उसके अनन्तर अभ्यासके होनेपर सूक्ष्म २ (बारीक) शब्द सुना जाताहै । यथा-

आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसंभवाः ।
मध्ये मर्दलशंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा ॥
अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिस्वनाः ।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः ॥

प्रथम २ जब प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रमें गमन करताहै तब उस समयमें समुद्र, मेघ (बद्दल), भेरी (नगाडा) झांझके शब्द समान शब्द सुने जातेहैं और मध्यमें अर्थात् सुषुम्नामें प्राणवायुकी स्थिरताके अनन्तर मृदंग, शंख इनके समान और घण्टा और काहल नामके जो बाजे हैं इनके शब्दके समान शब्द सुने जातेहैं अनन्तर ब्रह्म रन्ध्रमें प्राणकी स्थिरता होनेके पश्चात् किंकिणी, बांसुरी, वीणा भवरोंके शब्दकी तरह शब्द सुने जातेहैं इस प्रकार देहके मध्यमें अनेकों प्रकारका शब्द सुनाई देता है ।

महति श्रूयमाणेऽपि मेघभेर्यादिके ध्वनौ ।
तत्र सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत् ॥

मेघ, भेरी आदिका जो महान् शब्द है उसके समान शब्द सुनने पर भी उन शब्दोंमें सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म जो नाद है उसका चिन्तन करे । इसी प्रकार एकसे एकका सूक्ष्म सुनता जावे, सुनते २ मन नादरूप होजाताहै अर्थात् किसी प्रकारकी वासना उस समय मनमें नहीं आती अतः मन संकल्प रहित हो जाता है इसीको लय कहतेहैं ।

मकरन्दं पिबन्भृङ्गो गन्धं नापेक्षते यथा ।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयान्न हि कांक्षते ॥

जैसे पुष्पोंके रसका पान करता हुआ भ्रमर पुष्पके गन्धकी इच्छा नहीं करता है तैसे ही नादमें आसक्त हुआ चित्त भी विषयोंकी इच्छा नहीं करता, यह निश्चय है । इससे सावधान होकर प्रथम । चित्तको एकाग्र करके नादको श्रवण करे । पुनः वह नाद आपही मनको बांध लेता है ।

नादोऽन्तरङ्गसारङ्गबन्धने वागुरायते ।
अन्तरङ्गकुरङ्गस्य वधे व्याधायतेऽपि च ॥

जैसे व्याध मृगबन्धनके जालमें मृगको हतता है इसी प्रकार अपनेमें आसक्त हुए मनको नाद भी हतता है अर्थात् मनके जो संकल्प विकल्पादिक धर्म हैं वे नष्ट होजातेहैं। और जैसे घोडा मेखमें (खूंटा–लोहदंड जहां बांधा जाता हो) बांधनेसे चंचलताका परित्याग करदेता है ऐसे नादके श्रवणसे मन, और जैसे गन्धकमें पारा घोटनेसे एकरूप होजाताहै अर्थात् पारा नष्ट होजाताहै इसी प्रकार पारदरूपी मन गंधकरूपी नादमें नष्ट होजाताहै और जैसे काष्ठमें जलाई हुई अग्नि ज्वालाको त्याग कर काष्ठके संग शांत होजाती है तिसी प्रकार नादमें चित्त लगानेसे चित्त अपनी चंचलताको छोड लय होजाता है । यथा–

१ योगरहस्ये–" बद्धं तु नादबन्धेन मनः संत्यज्य चापलम् ।
प्रयाति सुतरां स्थैर्य्यं छिन्नपक्षः खगो यथा ॥"

काष्ठे प्रवर्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति ।
नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते ॥

इससे योगी नाद अवश्य श्रवण करे क्योंकि नादके श्रवणसे ही समाधि होजाती है ।

यत्किंचिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा ।
यस्तत्त्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः ॥

जो कुछ नादरूपसे सुना जाताहै वह शक्तिही है और जिसमें तत्त्वोंका लय होताहै वह निराकार परमेश्वर है ।

सदा नादानुसन्धानात्क्षीयन्ते पापसञ्चयाः ।
निरञ्जने विलीयेते निश्चितं चित्तमारुतौ ॥[1]

सदैव नादके सुननेसे पापोंके समूह नष्ट होजातेहैं और निर्गुण चैतन्यमें, चित्त और पवन ये दोनों अवश्य लीनहो जातेहैं, जब लीन होगये तब बाहरके शंखादि शब्द सुनाई नहीं देते, इसीको उन्मनी अवस्था (समाधिका रूप) कहतेहैं। अभिप्राय यह है. कि नादके सुननेसे चित्त अवश्य लय हो जाताहै। चित्तकी स्थिरता ही उत्तम तप, उत्तम पुण्य और उत्तम विद्या आदि कहा जाताहै । अर्थात् जितने उपाय वेद शास्त्र पुराणादिमें कहे हैं उनका सारांश चित्तकी स्थिरताका है । इससे उचित है कि चित्तको एकाग्र करे ।

योग[2]सिद्धलक्षण ।

फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ।
द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरुपूजनम् ॥

---

१ वाराहोपनिषदि-" सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥ "

२ मार्कंडेयपुराणे-" समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥"
भागवते-जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ "

चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम् ।
षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ॥

योगसिद्धिका प्रथम लक्षण यह है कि, मैं जो गुरूपदेशसे योगाभ्यास करता हूँ यह अवश्य सिद्ध होगा ऐसा विश्वास करे, दूसरे श्रद्धायुक्त, तीसरे गुरुकी सेवामें रहे, चौथे प्राणिमात्रमें समता (दुष्टबुद्धि न करना) रक्खे, पांचवे इन्द्रियोंको विषयोंसे रोके, छठे मिताहार भोजन करे (दो भाग अन्नसे, तीसरा जलसे और चौथा भाग उदरमें वायुके संचारार्थ रक्खे यह मिताहार है) यह छः लक्षण योगसिद्धिके कहे हैं सातवां नहीं हैं ।

गोधूमशालियवषाष्टिकशोभनान्नं क्षीराज्यखण्ड-
नवनीतसितामधूनि । शुण्ठीपटोलकफलादिक-
पञ्चशाकं मुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम् ॥

गेहूँ, चावल, साठी जावल (यह दो महीनेमें होताहै) और पवित्र अन्न (श्यामाक-नीवार आदि) दूध, घी, खांड, मक्खन (लोनी-नैनू) मिसरी, मधु (सहत) सोंठ-परवल आदि सुन्दर भाजी, मूंग, अरहर, निर्दोष जल, यह योगियोंके पथ्य हैं । इनके सेवनसे रोग नहीं होता इससे योगाभ्यासीको उचित है कि भोजनका नियम अवश्य करे क्योंकि जैसा शुद्ध अन्न खाया जायगा वैसीही बुद्धि भी स्वच्छ होगी ।

योगविनाशक ।

आम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटु ।
बहुलं भ्रमणं प्रातःस्नानं तैलं विदाहकम् ॥
स्तेयहिंसाजनद्वेषश्चाहङ्कारमनार्जवम् ।
उपवासमसत्यं च मोहं च प्राणिपीडनम् ॥
स्त्रीसङ्गमग्निसेवां च बह्वालापं प्रियाप्रियम् ।
अतीवभोजनं योगी त्यजेदेतानि निश्चितम् ॥

खट्टा (इम्ली आदि), रूखा, तीक्ष्ण (मिर्च आदि), लवण, सरसों, कडुआ वस्तु (तीत) बहुत घूमना, प्रातःकालका स्नान, शरीरमें तेल लगाना, सोने (सुवर्ण) की चोरी, जीवोंकी हिंसा, सबसे द्वेष, अहंकार, किसीसे प्रेम न रखना, उपवास (लंघन) करना, झूंठ बोलना, दूसरेको पीडा देना, स्त्रीसंग, अग्निका सेवन, प्रिय अप्रिय बहुत बोलना, बहुत भोजन करना ये सब योगी अवश्य त्याग दे क्योंकि ये योगमें विघ्न करनेवाले हैं।

मठलक्षण।

अल्पद्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतं
सम्यग्गोमयसांद्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम्।
बाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितं
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः॥

जिसका छोटा तो द्वार हो, जिसमें गवाक्षादि छिद्र गढे बिल न हों, न बहुत ऊँचा नीचा विस्तार हो, जो चिकने गोमयसे अच्छे प्रकार लिपा हो, स्वच्छ हो, जिसमें कोई जीव न हों, जो बाहर मंडप, वेदी और कूपसे शोभित हो और जिसके चारों तरफ भीत (पनाह) हो यह योगमठका लक्षण हठयोगके अभ्यासकर्ता सिद्धोंने कहा है। मतान्तरसे ऐसा भी है कि, बगीचेके बीचमें सुन्दर मन्दिर हो चित्रादिककी रचना हो, तीर्थ, नदी, पर्वत, वृक्ष समीपमें हों किसी सत्पुरुषका सत्सङ्ग हो इत्यादि लक्षण कहे हैं।

सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे।
धनुः प्रमाणपर्यन्तं शिलाजलविवर्जिते॥
एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना॥

जहां सुन्दर राज्य हो, धर्मवान् देश हो, सुखसे भिक्षा मिलती हो, किसी प्रकार चोर व्याघ्रादिकका भय न हो, उस स्थानमें चार हाथके प्रमाणमें पत्थर अग्नि, जलको छोड एकांतमें योगी छोटासा मठ बनाकर रहे। " सुराज्ये धार्मिके " इत्यादिसे यह अभिप्राय है कि, सुराज्यमें प्रजा भी दयालु और

धर्मात्मा होती है इससे भिक्षा दूध घी आदिभी अच्छे प्रकार मिलती है और उसको कोई सताता नहीं ।

योगाभ्यासके योग्य भोजन ।

अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ।

अभ्यासके आरम्भमें योगीको यथेष्ट घी दूध चाहिये कारण कि विना घी दूधके वह प्राणायामादिका अभ्यास शुद्ध नहीं होता और धर्मात्माका अन्न भी चित्तमें विकार नहीं करता ।

एवंविधे मठे स्थित्वा सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत् ॥

सम्पूर्ण चिन्ताओंसे रहित इस प्रकारके मठमें स्थित होकर गुरुके उपदेश किये हुए मार्गसे योगाभ्यास करे ।

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा ।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥

युवा (जवान) हो या वृद्ध (बुढापा) हो या अतिवृद्ध हो या रोगी हो या दुबला (कमजोर) हो अभ्याससेही सिद्धिको प्राप्त होताहै परन्तु सम्पूर्ण योगके अंगोंमें आलस्य न कर अर्थात् आसन प्राणायामादिका क्लेश न मानके अभ्यास करता जावे । क्योंकि अभ्यास ही मुख्य है ।

क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथं भवेत् ।
न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥

योगांगोंके करनेमें जो युक्त है उस पुरुषको ही योगकी सिद्धि होतीहै और जो योगके अंगोंको नहीं करता उसको योगकी सिद्धि नहीं होती । यदि कोई ग्रन्थही देखते २ सिद्धि चाहे तो उसको योग कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है ।

पीठानि कुम्भकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च ।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि ॥

पूर्वोक्त आसन और अनेक प्रकारके कुम्भक प्राणायाम दिव्य करण (विपरीतकरणी) महामुद्रा आदि ये सम्पूर्ण हठयोगके अभ्यासमें राजयोगके फल पर्यन्त करने योग्य हैं अर्थात् ये राजयोगमें प्रकृष्ट उपकारक हैं क्योंकि जो प्रकृष्ट उपकारक हैं वेही कारण होतेहैं । अभिप्राय यह है कि, हठयोगही राजयोगके प्राप्त्यर्थ सुगम उपाय है प्रथम ऋषि लोग वायुकाही साधनकर समाधिस्थ होते रहे जिससे वाक्सिद्धि होती रही, सब राजा लोग भय करते रहे परन्तु अब तो भाइयोंने व्यायाम (कुश्ती दंड मुद्गर आदि) ही जिससे कामादिककी वृद्धि और चित्तमें उन्मत्तता हो उसीको दृढ प्रिय कररक्खा है प्रथमारम्भ उसीका होताहै और प्राणायामका करना सन्ध्यासमयमें भी शुद्ध करना उचित नहीं समझते । बल्कि किसी किसीको तो ज्ञानही नहीं है कि, प्राणायाम किस रूपका है और जो कोई कुछ जानते भी हैं तो वे गायत्री मन्त्रका पाठ तीन बार कर लेना ही प्राणायामके फलको मान लेते हैं । देखिये यह कैसी अज्ञानता है कि, अपने गृहकी विद्या जिसके प्रतापसे निर्भय हो संसारमें सुखपूर्वक गृहस्थाश्रममें वा त्यागी होकर विचरें और लोग भी मर्यादाको मानें, उसको दुःखदायीसी मान लिया है, हठयोगका नाम सुनते ही मानो ग्रसा चाहता है । परन्तु इसमें किसीका दोष नहीं क्योंकि " विनाशकाले विपरीतबुद्धिः " विनाशकालमें बुद्धि विपरीत होती है ।

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः ।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः ॥

संपूर्ण तापोंसे तपायमान मनुष्योंका आश्रय मठरूप और सम्पूर्ण योगियोंका आधार (आश्रय) कमठ (कच्छप) रूप हठयोग है ।

हठविद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता ॥

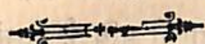
योगसिद्धिका अभिलाषी योगी हठविद्याको भले प्रकार गुप्त रक्खे क्योंकि गुप्त रखनेसे यह विद्या वीर्यवाली और प्रकाश करनेसे वीर्यरहित होतीहै । अभिप्राय यह है कि, जो पुरुष योगकी सिद्धि चाहे वह पुरुष न तो किसीसे

कहे कि हम योगाभ्यास करते हैं और न कभी दिखावे, ऐसा गुप्त रखनेसे साधकका कार्य कुछ न कुछ सिद्धही होता है और योगका आनन्द माल्म होने लगता है। जो पुरुष योगसिद्धिकी इच्छा करे वह आलस्य कभी भी न करे, न बहुतसी बातें करे, न मंत्र तन्त्रोंके साधनमें रहे, न औषध जडी बूटीके चक्करमें पडे क्योंकि ये विघ्न करनेवाले हैं, इससे उक्त लक्षणके क्रमसे अभ्यास करे परन्तु गुरूपदेश ले अभ्यास करे क्योंकि, जो विना गुरुके अधिक अभ्यास करता है वह धोखा खाता है और जिससे यह विद्या प्राप्त करे उसीको देवता समझे, सेवा करनेमें तत्पर रहे और विश्वास रक्खे कि, इनका वाक्य हमको अवश्यही फलरूप होगा कारण कि वर्तमान कालमें गुरुके न माननेसे ही दुर्बुद्धि होरही है इससे गुरुकी सेवा करनाही सब प्रकारसे श्रेयस्कर है।

यह कई एक योगाभ्यासके ग्रन्थोंके संमतसे थोडेमें ही लिखा गया है और बहुतसी बातें कहीं २ अनुभवकी भी लिखी गई हैं जो साधकोंको उपयोगी होसकती हैं। शिवार्पणम् ॥ शांतिःशांतिःशांतिः ॥

इति योगाभ्यासप्रकरणम्।

अथ ग्रंथविवरण प्रकरण ३.



ॐकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा।
पितरौ यो न जानाति ब्राह्मणः सोऽन्यवीर्यजः ॥

ओंकाररूपी पिता और गायत्रीरूपी माताको जो ब्राह्मण नहीं जानता है वह वर्णसंकर है।

इस योगसन्ध्यानामक ग्रंथमें उक्त माता पिताका वर्णन है जिसमें प्रथम पिताका वर्णन दो प्रकरणोंमें करके तीसरेमें, माताका वर्णन है। ओंकाररूपी पिता कैसा है।

ओंकारकी महिमा।

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कारमेव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।

ओं यह जो अक्षर है वह संसारमें जो कुछ वस्तु है वह सब ओंकार ही है, वह जाननेयोग्य है, भूत वर्तमान और भविष्यकाल भी ओंकार ही है इससे उपरांत तीनों कालसे परे जो तुरीय वह भी ओंकार ही है।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद॥

एक मात्रासे अनन्तमात्राओंका प्रतिपादन जो ओंकारमें सगुणरूपमें किया है अब उसको निर्गुणमें श्रुतिका ऐसा कथन है कि वह ओंकार मात्रारहित है, पुनः तुरीयावस्थारूप अर्थात् जिससे परे दूसरी अवस्था नहीं है, पुनः इन्द्रिय मनबुद्धिसे नहीं जानने योग्य अर्थात् निदिध्यासनद्वारा अन्तःकरणसे बोध होनेवाला, पुनः संसाररूपी जो प्रपञ्च उसका नाश करनेवाला अर्थात् अविद्याके कारण जो जीवमें ब्रह्मसे भिन्नताकी ग्रंथि है उससे छुटानेवाला पुनः कल्याणरूप अर्थात् जो प्राणी अन्तःकरणकी शुद्धिसे उपासना करता है उसको परमानन्दकी प्राप्ति करादेता है। पुनः जिससे श्रेष्ठ कोई नहीं अर्थात् सर्वदा आप ही आप विद्यमान ऐसा जो ओंकार उसको जो कोई आत्मामें आरोप करके आत्माको जानता है वही जानता है। यह ओंकार द्वारा परब्रह्मकी प्राप्ति कैसे होती है उसका कथन—

---

१ वासिष्ठलैंगपुराणे–" जितेन्द्रियो जितक्रोधो वाग्यतः स्वस्तिकासनः। पर्वताग्रे नदीतीरे गुहायां वा शिवालये॥ १॥ अन्येषु बुद्धिरम्येषु स्थानेष्वव्यग्रतो मुने। प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि शाकमूलफलाशनः॥ २॥ भिक्षाहारोथवाचार्यः स्मृत्वा साम्बं त्रियम्बकम्। प्रणम्य मनसा मन्त्रं प्रणवाख्यं जपेद्द्विजः॥ ३॥

अमृतनादोपनिषदि-

ओंकारं रथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥
तावद्रथेन गन्तव्यं यावद्रथपथि स्थितः ।
स्थाता रथपतिस्थानं रथमुत्सृज्य गच्छति ॥

ओंकाररूपी रथपर सवार हो विष्णुको सारथी बनाके ब्रह्मलोकको जानेवाला (खोज करनेवाला वा इच्छा करनेवाला) रुद्रकी आराधना करे । रथके द्वारा वहांतक जाना चाहिये, जहांतक रथका रस्ता है जब रथके स्वामीका स्थान प्राप्त हुआ तो रथको छोडकर स्वामीमें जा मिले । अभिप्राय यह है कि, शुद्ध सतोगुणी वृत्तिसे ओंकारका जप, ध्यान करता हुआ परब्रह्मका खोज करनेवाला अहंभावकी उपासना करे अर्थात् अहं ब्रह्मास्मिका अधिकारी हो । ओंकारका जप ध्यान कहांतक करे कि, जहांतक " अहं ब्रह्मास्मि " अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं ऐसी स्थिति न हो वहां तक और जब उक्त[1] स्थिति होजावे अर्थात् द्वैत भावकी ग्रंथि निवृत्त होजावे तब ओंकारका जप ध्यान छोड देवे । जब अद्वैत पदकी प्राप्ति होगई पुनः वह क्यों किसका स्मरण करेगा ?-

अमृतबिन्दूपनिषदि-

अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम् ।
ॐकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः ॥ १ ॥
ॐकारप्रभवा देवा ॐकारप्रभवाः स्वराः ।
ॐकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥

---

१ शुकरहस्योपानिषदि-" स्वतः पूर्णः परात्मा च ब्रह्मशब्देन वर्णितः । अस्मितैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥" वि. चू. " अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम् । संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत् ॥ १ ॥ "

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये जिसके आठ अंग हैं, अथवा चार वर्ण और चार आश्रम ये आठ अंग हैं और अकार, उकार, मकार और अर्द्धमात्रा जिसके चार पद हैं अथवा चारों वेद जिसके पद हैं और हृदय, कंठ, ब्रह्मरन्ध्र जिनके तीन स्थान हैं अथवा भूर्भुवः स्वः ये तीन लोक जिसके स्थान हैं और शिव, विष्णु, देवी, सूर्य और गणपति जिसके ये पांच देवता हैं अथवा " ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः " ये पांच देवता हैं, ऐसे ओंकारको जो नहीं जानता वह ब्राह्मण नहीं है। अभिप्राय यह है कि, अष्टांगयोग द्वारा ओंकारके चारों पदोंको तीनों स्थानोंमें जो पांच देवताओंको एकात्मभाव अद्वैत स्वरूप करके नहीं जानता अर्थात् जिसको अद्वैत पदका बोध नहीं हुआ वह ब्राह्मण ही नहीं है। ओंकारहीसे सब देवता उत्पन्न हुए ओंकारसे इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि स्वर अथवा जिस करके वेद उच्चारण होताहै अथवा सामगायनादि स्वर उत्पन्न हुए हैं। अर्थात् त्रैलोक्यमें जो चर अचर हैं वह सब ओंकारहीसे उत्पन्न हुए हैं। इन वचनोंसे यह सिद्ध होताहै कि, त्रैलोक्यमें जो कुछ है वह सब ओंकार ही है और सगुण "अपर ब्रह्म" निर्गुण " परब्रह्म" भी ओंकारही है।

इति ग्रन्थविवरणम्।

अथ साधनोपाय।

ऐसा ओंकाररूप पिताको वर्णन करके अब थोडा साधनोपाय कथन करताहूं। जिसे पहिले भी कह आया हूं—

साधकको चाहिये कि, प्रथम मतवादको अर्थात् जो यह अहंकार और द्वेष रहता है कि मैं शैव हूं, वैष्णव हूं, शाक्त हूँ जिसको मैं भजता हूं वही श्रेष्ठ है, शेष निंदनीय हैं ऐसा समझ कर निन्दामें तत्पर होजाना, इस विवादको छोडे और वर्तमान कालमें जिन बुधजनोंने वादविवाद खंडन मंडन करना ही विद्याका लाभ, अपना कल्याण और देशोपकार समझ रक्खाहै,

उनकी संगति, उनके कल्पित ग्रन्थोंके अवलोकनका त्याग करे क्योंकि ये मननशील निदिध्यासी नहीं हैं, विना निदिध्यासके यथार्थ ब्रह्मका बोध नहीं होता और शास्त्रके रचनेवाले तो तपस्वी महर्षि थे उन्होंने आपसके ग्रन्थोंमें विरोध नहीं माना है किन्तु अपनी २ बुद्धिके अनुसार ब्रह्मका प्रतिपादन किया है। “ एके सत्पुरुषा बहुधा वदंति ” जैसा पतंजलिने योगाभ्यास करके ब्रह्मकी प्राप्ति कही, महर्षि कपिलने प्रकृति पुरुषका निर्णय करते हुए ज्ञानद्वारा, जैमिनिने कर्म यज्ञादि द्वारा, गौतम, कणादने पदार्थ द्रव्यादि विवरण कहा और व्यासजीने द्वैतका भ्रम निवृत्तकर अद्वैतरूप ब्रह्मप्रतिपादन किया इसमें विचार किया जाय तो कुछ विरोध नहीं है क्योंकि महत्पुरुषोंकी वंदना अनेकों प्रकारसे होती है परन्तु इसका यथार्थ भेद मतवादियोंसे स्पष्ट नहीं होता क्योंकि उनका तो खंडन मंडन करना ही पुरुषार्थ है इससे जिज्ञासु पुरुष मतवादी ग्रन्थोंकी तरफ कभी भी ध्यान न देवे क्योंकि इनसे बुद्धिमें अनेक प्रकारका विघ्न उत्पन्न होता है। किसी सत्पुरुषके समीप ब्रह्मबोधक ग्रन्थको अध्ययन अथवा यथार्थ श्रवण कर विचारशील हो एकान्तमें अभ्यास करे। पुनः जब कभी चित्तमें किसी प्रकारकी शंका उत्पन्न होजावे तो सन्देह निवृत्त करले, किसी प्रकारकी इच्छा न करे। यदि किसी तरहकी कल्पना तीर्थादिक करनेकी हो तो जितना होनेके लायक हो वह करले परन्तु ऐसी कल्पना न करे कि आयुष्य पूरी होजाय और कल्पना न पूरी हो क्योंकि ये बंधनके मूल हैं। कट्वम्ल पदार्थोंको त्यागदे इनसे चित्तमें चंचलता रहती है, आहार इतना करे जितना तीन घण्टोंमें अथवा छः घण्टोंमें अवश्य पचन होजाय, प्रयोजनमात्र भाषण करे, विशेष निद्रा न ले और जो कुछ निद्रा लेवे वह भी असावधानीसे न हो, अभ्यासकी तरफ आठ पहर दृष्टि रहे, अमीरोंकी संगतसे बचा रहे, द्रव्यको जहांतक हो क्रम २ से त्यागदे, स्त्रियोंके हावभावोंसे निराला रहे, इनका किसी कालमें किसी प्रकारसे स्मरण न करे, वीर्यकी रक्षा जिस तरह हो स्वप्नमें भी करता रहे, वीर्यपात मनकी चञ्चलतासे और कट्वम्ल उष्ण पदार्थोंके सेवनसे होता है। जिन २ वस्तुओंसे क्रोध उत्पन्न हो उनको त्यागदे, स्थानादिके प्रपञ्चमें न पडे, आसन पर

बैठे २ ही भोजन आजाया करेगा तभी करेंगे, नहीं तो नहीं ऐसा हठ अभ्यासी पुरुष न करे सुखसे आजाय तो अच्छाही है नहीं तो भोजनमात्रका भिक्षादि द्वारा प्रबन्ध करले अथवा जडी बूटी मालूम हो तो उससे निर्वाह करले, किसीको हठ करके क्लेश न दे, शाप आशीर्वाद देनेकी कल्पनाको छोडे, परमार्थकी तरफ भी दृष्टि न देवे, आलस्य किसी कालमें न करे, निर्भय रहे क्योंकि मनुष्य मनुष्यकी सेवा करनेसे अज्ञानवश हो निर्भय रहता है और सर्वव्यापी, सबका प्रेरक, उत्पत्ति, स्थिति, लयका करनेवाला, विश्वम्भर, प्राणिमात्रका भुक्ति मुक्तिका दाता है उसका स्मरण तीनों कालमें जो करता है उसको किसका भय है ? उससे परे दूसरा कौन है ऐसा सर्वदा चित्तमें रखकर किसीसे भय न माने, निर्द्वंद्व रहे, सुख वा दुःख प्रारब्धानुसार जो प्राप्त होजाय उसको हर्ष विषाद न करता हुआ भोगले, यह संसार दुःखका मूल है ऐसी सर्वदा भावना रक्खे क्योंकि त्रैलोक्यमें कोई सुखी नहीं है। जैसा सांख्ये-"कुत्रापि कोऽपि सुखीति" इस त्रैलोक्यमें देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि किसी प्राणीको किसी कालमें किंचित् सुखका लाभ होता है। "तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निक्षिपन्ते विवेचकाः" परन्तु वह भी मिठाईमें विष मिला हुआ सरीखा जिसके भक्षणका परिणाम मृत्युरूपी दुःख है ऐसा खानेमें सुख परिणाममें दुःख समझकर विवेकी पुरुष (वैराग्यवान विचारशील ब्रह्मवेत्ता) उसको भी दुःख ही समझते हैं। वैराग्यमें मस्त रहे क्योंकि वैराग्यकी धारणासे ज्ञान पुष्ट होता

---

१ "धन्योस्ति को यो हि परोपकारी" और भी परमार्थके विषयमें बहुत सी वंदना हैं परन्तु साधकके वास्ते यह बाह्य परमार्थ चित्तकी चंचलताका मूल है और चित्तको निश्चल रखनेके वास्ते ही सब प्रकारसे उपाय किया जाताहै इससे मुमुक्षु जिज्ञासु इसमें भी न पडे क्योंकि जिसका चित्त ब्रह्मविचारमें अल्पकाल भी स्थित होताहै उस पुण्यके समान कोई भी पुण्य नहीं है। यह आभ्यन्तरीय परमार्थ है "स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्ताऽपि सर्वाऽवनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः। संसाराच समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ॥ १ ॥" तथा च "ये हि वार्त्तां विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्। वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥ १ ॥"

है; जडी बूटी रसायनादि दवाइयोंके चक्करमें पडना लडका लडकी देना यह भी अभ्यासीको महाव्याधि है इससे अलग रहे। मेरा अभ्यास अच्छा है मैं सिद्ध हूँ ऐसी कल्पना न करे, दूसरे साधु (महात्मा) की निन्दा भी न करे क्योंकि संसारमें अनेकों प्रकारके पुरुष हैं परमात्मा सभीमें वास करताहै एतदर्थ समदृष्टि रखना यही धर्म है किसी जीवकी हिंसा न करे न उपदेश दे, मन्त्रतन्त्रोंकी तरफ चित्तको न जानेदे, परमात्माका स्मरण करनेसे चित्त लगानेसे वह प्राणी कभी दुःखको प्राप्त नहीं होसकता एसी दृढता रखे और हम परमात्माकी प्राप्तिके लिये परिश्रम कर रहे हैं कष्ट उठा रहे हैं न जाने प्राप्त हों या न हों, ऐसा संशय कभी न करे, अवश्य प्राप्त होंगे। यदि संचितकी प्रबलता है तो थोडे ही दिनोंमें प्राप्त होंगे और नहीं तो चिरकालमें प्राप्त होंगे क्योंकि पतञ्जलिः— "स तु दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः " वह श्रद्धा पूर्वक चिरकाल पर्यन्त निरंतर अभ्यास करनेसे प्राप्त होताहै। अतः मरणपर्यंत अभ्यास करे क्योकि देहान्त तक अभ्यास करता जायगा तो मरण समयमें शुद्ध बुद्धि रहेगी। श्रुतिः " यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति " जैसा इस लोकमें मनुष्य कल्पना वा ध्यान करता है वैसाही मरणके पश्चात् उसको प्राप्त होता है। इससे अभ्यासीको घबडना नहीं चाहिये। धीरजको न छोडे न किसीसे शत्रुता न मित्रता करै किन्तु उदासीन भावसे रहे। मन जिस वस्तुकी इच्छा करे वह कदापि न करे। इन्द्रियां जिधरको जाने लगें विचार द्वारा उधरसे ही हटावे, अच्छे पदार्थ खानेकी इच्छा हो तो उस समय न दे जब इच्छा न हो तब आगे रख दे, नींद आवे तो हठात् न सोवे, नींद नहीं आती है तब सोनेकी इच्छा करे अर्थात् सब प्रकारसे मन इंद्रियोंको तोडे क्योंकि इन्हींके द्वारा सब दोष होते हैं, आप साक्षिमात्र अलग रहे कारण कि जितने यह सुख दुःखादि धर्म हैं वह अन्तःकरणादिकोंके हैं उन धर्मोंको अपने ऊपर आरोप करके दु.ख उठाना यह कितनी भूल है ऐसी भावना रक्खे।

---

१ श्रुतिः—" पराञ्चि खानि व्यतृणत् " बाहर जानेवाली इंद्रियोंका हनन करे।

साधकको चाहिये कि, निर्जन जगहमें जाकर कुटी या गुफामें बैठ कर रात्रिके समय सावधान चित्तसे बैठे और कुछभी स्मरण न करे । जो स्वयं कल्पना उत्पन्न हो अथवा किसी प्रकारका शब्द सुनाई दे उसको अनुभव करे, कि यह कल्पना सत्त्व, रज, तम किस गुणकी है मिश्रित है या भिन्न २ है। परंतु कल्पना होतेही विचार करनेमें न लग जाय, किंतु समझ ले और चित्तको कहीं जाने न दे । श्वास कहांसे उत्पन्न होती हैं ऐसा लक्ष्य रक्खे शब्द सुनाई दे तो ख्याल करे कि बाहरसे शब्द आता है या अन्दरसे, ऐसा रात्रिभर सावधान चित्तसे निरीक्षण किया करे इससे कुछ कालमें आपसे आप गुणोंका भेद, तत्त्वोंका भेद, नाडियोंका भेद, (सुषुम्ना, कुण्डलिनी) शब्दोंका भेद सब मालूम होने लगेगा लेकिन चिरकालतक आलस्य न करे परिश्रम करे और जब अनुभवका आनंद आनेलगेगा तब वह आपही किसीसे व्योहार करनेकी इच्छा नहीं करेगा और क्रम २ से अभ्यासकी दृढता होनेसे महात्माओंके दर्शन भी होते जायंगे । यह किंचित् सूचना मात्र लिखदिया है । अभ्यास करनेसे बहुतसे परमात्माविषयक अनुभव दर्शित होंगे जिसका आनंद वा शंका समाधान वह पुरुष आप ही करेगा । उस रात्रिके लक्ष्यको दिनमें चलते फिरते बैठते सोते मनन किया करे क्योंकि मननसे बहुत लाभ होताहै ।

विशेषकथन ।

मैत्र्युपनिषदि—देहो देवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलः शिवः। त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥

शरीरको देवमंदिर कल्पना किया उसमें वास करनेवाला जो जीव[1] वेही स्वयं शिव हैं, मोहादिकके कारण ब्रह्मसे मैं भिन्न हूँ ऐसा अज्ञान उसको साधनसे निर्माल्य (देवताके ऊपर चढाहुआ पुष्प बिल्वपत्रादि) समझ त्याग कर अहंभाव अर्थात् वह शिवरूप मैं हूँ ऐसी स्थिति धारण करे (यही पूजा

---

१ पैङ्गलश्रुतिः—" सर्वज्ञेशो मायालेशसमन्वितो व्यष्टिदेहं प्रविश्य तया मोहितो जीवत्वमगमच्छरीरत्रयतादात्म्यात्कर्तृत्वभोक्तृत्वमगमज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमूर्च्छामरणधर्मयुक्तो घटीयन्त्रवदुद्विग्नो जातो मृत इव कुलालचक्रन्यायेन परिभ्रमतीति । "

करे) अथवा अजपाक्रमसे अर्थात् ' सोऽहं हंसः ' इस क्रमसे पूरक रेचक द्वारा अष्ट पहर लक्ष्य रक्खे । इसका अभ्यास बहुत उत्तम है बहुतसे महात्मागण इसमें आरूढ हैं । कुछ गृहस्थ लोग भी सबेरे ही (प्रातःकाल) संकल्प करके ही सिद्धि मानते हैं परन्तु इसका लक्ष्य महात्माओंके पास भिन्न ही रहताहै यह उपासना परब्रह्मप्राप्तिकी है ।

अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः ।
स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥

समदृष्टि करके सर्वत्र देखना यही ज्ञान है अर्थात् प्राणिमात्रमें परमात्मा एकरससे स्थित है, कौन श्रेष्ठ है कौन नेष्ट है " सर्वं खल्विदं ब्रह्म " यह सब जगत् निश्चय करके ब्रह्म है " इदं सर्वं यदयमात्मा " समग्र यह जो संसार है वह यह आत्मा है, ऐसा भेदरहित समझना यही ज्ञान है, किसी प्रकारकी वासना न उत्पन्न होना यही ध्यान है । मनके संकल्प विकल्प जो धर्म जिनसे अनेक प्रकारके सुख दुःखकी प्राप्ति होतीहै ऐसा जो विकार वह त्याग करे अर्थात् साधनसे मनको विषयोंकी तरफ न जाने दे, इन्द्रियोंको रोकना यही आचार है ।

ब्रह्मामृतं पिबेद्भैक्षमाचरेद्देहरक्षणे ।
वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते ॥
इत्येवमाचरेद्धीमान्स एवं मुक्तिमाप्नुयात् ॥

शरीरकी अन्नादिकसे रक्षा करताहुआ परमात्माके अनुभव वा ध्यानरूपी अमृतको पान करते आचरण करे । अद्वैतपक्षका आश्रित होता हुआ अकेला एकांतमें वास करे, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् आचरण धारण करता है उसको मुक्ति प्राप्त होती है। जिस पुरुषको वायुद्वारा आराधना करना हो वह जैसा वायुकी आराधना करनेका नियम योगप्रकरणमें कहाहै अथवा वायुके

---

१ " मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव ।
भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ १ ॥
सुशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः ।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ २ ॥ "

अभ्यासी पुरुषसे आज्ञा ले जैसा कहे वैसा अभ्यास करे, परन्तु यह निश्चय है कि जैसा २ अभ्यास बढता जायगा तदनुसार उसको सत्पुरुष भी मिलते जांयगे कि जिससे उसको अभ्यासकी दृढता होती जावेगी।

परन्तु यह बात याद रहे कि, कोई विरलाही सुमाताका पुत्र योगविद्याकी आराधना कर सिंहवत् गर्जना करता हुआ त्रैलोक्यमें विचरेगा, यह वही योग-विद्या है कि जिसके प्रतापसे नारदादि महर्षि कहलाये और भी गोरक्षनाथादि अभी विचर रहेहैं, हाल वर्तमान कालमें जंगल, पहाडोंमें अच्छे २ योगीगण विशेष उमरवाले विद्यमान हैं जिनको कालका भय ही नहीं है और कल्पना उत्पन्न होनेपर दूसरा शरीर धारण कर भोगोंको भोगकर पुनः स्वस्थानमें पूर्व शरीर धारण कर योगमें स्थित होतेहैं, परन्तु जो योगी कल्पना करताहै उसको श्रेष्ठ योगी जिनको कभी कल्पना नहीं उत्पन्न होती जो निर्विकल्प समाधिमें बैठे हुए हैं वे हलकापन (लघुता) समझतेहैं अर्थात् अभी बालककी बुद्धिकी तरह चञ्चलता बनीहुई है क्योंकि जब परमात्माका आनन्द प्राप्त हुआ तब संसारी जो तुच्छ भोग उसकी तरफ चंचलता क्यों करना, कल्पना करना यही अधःपातका चिह्न है। इस हठयोग (वायुके आराधक) की वंदना कहांतक की जाय अकथनीय है। जो पुरुष कष्टको सुख मानता हुआ आलस्यरहित चंचलताको छोड परिश्रमसे सद्गुरुकी सेवा करेगा वही आनन्दका भागी होगा परन्तु यह लोग न ख्याल करें कि ऐसे सत्पुरुष नहीं हैं होते तो दिखलाई न देते ? यह समझ अत्यन्त अज्ञानकी है, काम क्रोध आदिके लपेटेमें पडे हुए, काम-नाओंकी थैली लिये हुएको घर बैठेही बैठे अथवा भटकते हुएको कहीं सत्पु-रुष मिलतेहैं ? उनको अपना अधिकारी जानकर साक्षात् यमदेव स्वयं दर्शन देतेहैं। भला कहिये तो जो काम क्रोध अहंकार तृष्णादिका शत्रु योग है उसकी गठरी कमरमें बांध रक्खी है फिर काम क्रोध आदि अपने विनाशक योगीके पास कैसे जाने देंगे, दर्शन कैसे हो ? जब विद्या, धन, बलादिका अभिमान त्याग कर नम्रता पूर्वक ईश्वरसे प्रार्थना करताहुआ सतोगुणी वृत्तिसे जब कुछ ईश्वरका नाम स्मरण करे तब सद्गुरुकी प्राप्ति होती है।

जो पुरुष ऊपर लिखी बातोंकी धारणा करेगा वह अवश्य परमानंदको प्राप्तहोगा।

यह वायुकी उपासना जो है वह प्राणदेवकी उपासना है, यह प्राणही अनेक रूप होकर प्राणिमात्रमें विद्यमान हैं इन्हींसे सबका जीवन मरण है और "एकोऽहं बहु स्याम्" "तदैक्षत बहु स्याम्" यह श्रुतियां इन्हींके ऊपर हैं तथा च श्रुतिः "स प्राणमसृजत" उस परमात्माने प्रथम प्राणको उत्पन्न किया अर्थात् सब देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियोंका जीवन रूप होकर आप ही प्राणरूपसे प्रकट हुआ क्योंकि श्रुतिः—"प्राणो ब्रह्मैव" प्राण ब्रह्मही है।

यह प्राण अपान व्यान आदि भेद करके बहुत प्रकारका है। बहत्तर हजार नाडियां तथा मतांतरसे अधिक भी शाखायें सब प्राणहीसे हैं, यही सृष्टिके कर्ता हर्ता हैं इसीसे समग्र प्राणी पशु पक्षी पर्यंत अन्य किसी देवताको यदा कदा पूजन तथा हवन करता है, परन्तु प्राणब्रह्मको ज्ञान अज्ञानसे नित्य ही मुखद्वारा ग्रासरूप हवन अत्यन्त श्रद्धासे करता है और जहां तक होसकता है दुःखकी हालतमें भी रक्षारूपी स्मरण सावधानीसे लक्ष्य (ख्याल) रखता है यहां तक कि सिद्धअवस्था (पूर्णज्ञान) को प्राप्त हुआ भी कुछ न कुछ प्राणरूप अग्निस्वरूपको हवन करता रहता है इसीसे यह अद्वितीय ब्रह्म है कि जिसकी पूजा ज्ञान अज्ञानरूप दोनों प्रकारसे होती है क्योंकि वह दोनों प्रकारके प्राणियोंमें समरूपसे निवास करते हैं, ऐसा हरएक प्रकारसे ब्रह्मरूप निश्चय करके योगीजन वायुरूपसे आराधना करते हैं क्योंकि वह प्राणवायु स्वरूप ही है निर्गमप्रवेश (जाना आना) यही व्यापार है इसी करके बहुतसे वायु आराधक महात्मा पूरक और रेचकको ही करते हैं जाने आनेमें जो समय जाता है उसीको कुंभक मानते हैं और कुछ माहात्मा पूरकसे द्विगुण कुम्भक और कुंभकसे द्विगुण रेचकको स्वीकार करते हैं क्योंकि प्राण पूर्वस्थानसे च्युत (गिरा-छूटा) हुआ है तो फैलता ही गया इससे रेचक (छूटना) विशेष होना ऐसा उनका सम्मत है ऐसा आभ्यन्तरी तथा बाहरी प्राणायाम करके और भी भेद हैं। कुछ प्राण उपासक छान्दोग्य उपनिषद्द्वारा पांच आहुति विधियुक्त नियमसे "ॐ प्राणाय स्वाहा ॐ अपानाय स्वाहा ॐ व्यानाय स्वाहा ॐ उदानाय स्वाहा ॐ समानाय स्वाहा" इस क्रमानुसार हविष्यान्न वस्तुसे आमले प्रमाण ग्रास दांतोंसे न स्पर्श होता हुआ जिह्वाद्वारा करते हैं जिसका फल चिरकालपर्यंत स्वर्गादिका वास है।

अपरंच पूरक, कुंभक, रेचकका यह अभिप्राय है कि योनिस्थानमें प्रवेश होना कुछ काल रहना पुनः निकलना तथा अच्छे बुरे कर्मोंको करके तदनुसार स्वर्ग वा नरकको जाना वहां कुछ काल पर्यंत सुख तथा दुःखको भोगना पुनः आके कर्मानुसार योनियोंमें भ्रमण करना यही पूरकादिसे सूचित है (प्रवेश पू० स्थिरता कुं० निकलना रेचक) अथवा स्वर्गादि पर्यन्त जाना पुनः लौटना पुनः जाना पुनः आना यही क्रम प्राण द्वारा रेचक पूरक करके विदित है। जहां तक आना जाना लगा है वह दुःख ही है एतदर्थ अचल स्थितिके वास्ते प्राणोपासना प्राणायामके क्रमसे उपासनीय है क्योंकि विना प्राणायामके प्राणकी स्थिरता होना दुर्लभ है और स्वरोदयवालोंने भी ऐसा कहा है कि प्राणकी स्वाभाविक संचार गति बारह अंगुल है। वह अभ्याससे ज्यों २ कम होती जाती है त्यों २ सुखसे सिद्धियोंका लाभ और चित्तकी चंचलता शांत होती है कारण कि चित्त और वायुकी गति एकरूप है और परिश्रम करते २ ईश्वर सद्गुरुकी कृपासे जब प्राणकी गति निश्चल होजाती है अर्थात् कुछभी गमागम नहीं होता उसीको समाधि, तुरीय, अमर, अमृतत्व, कालनाशक, परमानंद और उन्मनी तथा मनोन्मनी अवस्था कहतेहैं। फिर वह प्राणी ब्रह्मरूप ही होजाता है इसलिये वायुरूप प्राणोपासना की जाती है क्योंकि वायुकी आराधनामें यह गुण हैं कि प्राणायाम करते २ आपसे आप ही वायु तथा चित्तकी स्थिरता होती है और ज्यों २ वायु चित्तकी स्थिरता होगी त्यों २ दृढ वैराग्य तथा उत्कृष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होती जायगी और तत् त्वं की माया, अविद्या उपाधि क्रमक्रमसे नष्ट होती हुई असिपदका अधिकार प्राप्त होगा।

ओंकारका भजन।

तारं सूत पुकारं प्रणवहि । टेक ॥ एक अजन्मा अलख निरञ्जन निराकार श्रुति धारम् । गुणातीत तुरिया पद भासित सोइ माया अवतारम् ॥१॥ तत त्वं रूप विकार विनाशन अचल शुद्धि मति

सारम्। अष्ट अङ्ग चतुपाद परेशं भुक्ति मुक्ति दातारम् ॥२॥ त्रिगुणरूप त्रय ताप निवारण त्र्यक्षर भव भय हारम्। नाम लेत अघ कटत अहर्निशि हरिॐ हरि ओंकारम् ॥ ३ ॥ नाम सदाशिव मिलत नारायण चेतन ब्रह्मविचारम्। ब्रह्मचारि हरिहर पद सेवत शिव शिव करत पुकारम् ॥४॥ प्रणवहि तारं सूत पुकारम् ॥

इति साधनोपाय ॥

अथ सन्ध्याप्रकरणम्।

ब्राह्मणलक्षण।

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम्।
विद्याविज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥

योगः—चित्तवृत्तिनिरोधः प्राणायामो वा कर्त्तव्यः।

चित्तवृत्तिको रोकना, या प्राणायाम करना यह योग कहलाता है। मुख्य करके ब्राह्मणको योगाभ्यास साधन करना यह प्रथम लक्षण है इसीसे पूर्वमें ऋषि लोग योगाभ्यास प्रथम ही करते रहे और इसी विद्याके नष्ट होनेसे ब्राह्मणोंका तेजोंश जाता रहा।

तपः—स्वधर्मानुष्ठानमेव तपः वा कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतं तपः।

स्वधर्ममें तत्पर रहना अथवा कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करना (इसमें शरीर सूख जाताहै) ब्राह्मणका मुख्य धर्म सन्ध्या गायत्रीका जप और वेदाध्ययन है। " स्वधर्मे निधनं श्रेयः"

दम-दान-सत्य ।

दमः-बाह्येन्द्रियनिग्रहः ।

नेत्र कर्णादि इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना ।

दानम्-स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वापादनं वा सुपात्रेभ्यो दीयते यत्तद्दानम् ।

किसी वस्तुसे अपना अधिकार हटाकर दूसरेका स्वामित्व (मालिकपन) कर देना वही दान है अथवा सुपात्रको जो दिया जाय वही दान है । ब्राह्मणको दान लेने और देनेका भी अधिकार है चाहे दरिद्री क्यों न हो, पर्वादिक पर वित्तानुसार अवश्य देना चाहिये (जैसा द्वार पर अतिथिके आनेसे अवश्य सत्कार करे) ।

"दानमेकं कलौ युगे" "धनेन किं यो न ददाति याचके"

वह धन कैसा जो भिक्षुकको न दियागया ।

सत्यम्-याथातथ्यं वाक्यं सत्यम् ।

जैसी बात हो वैसी कह देना सत्य कहाता है ।

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
न हि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥

सत्यके बराबर कोई धर्म नहीं और झूंठ बोलनेके बराबर कोई पाप नहीं और सत्यके समान कोई ज्ञान नहीं इस लिये सदा सत्य बोलना चाहिये ।

समूलं वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदाति । इति श्रुतेः ॥

जो झूंठ बोलता है वह जड सहित सूखजाता है ।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

१ देवीभागवते-" सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् । हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव " ॥ १ ॥

सत्य बोले परन्तु प्रिय सत्य बोले और जो प्रिय न हो ऐसा सत्य भी न बोले झूंठी प्रिय भी न बोले अर्थात् झूंठी बात तो है परन्तु सुननेवालेको प्रिय है तो उसे भी न कहे यह सनातन धर्म है।

स्त्रीषु नर्मविवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥

स्त्रियोंके विषयमें, हास्य (हंसी ठट्ठा) में, विवाहमें, वृत्ति (जीविका) के वास्ते, प्राणके संकटमें, गौ ब्राह्मणके लिये और झूंठ बोलनेसे किसीका प्राण बच जाय तो जीवहिंसामें झूंठ बोलनेसे दोष नहीं होता।

शौच-दया।

शौचम्-बाह्याभ्यन्तरशुद्धिः।

बाहर भीतरसे पवित्रता।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।

शरीर जलसे शुद्ध होताहै, मन सत्यसे, जीव विद्या और तपसे और बुद्धि ज्ञानसे शुद्ध होतीहै। बाह्य आचार मल मूत्रकी शुद्धि स्नान और आभ्यन्तर आचार-मनसे किसीका अनिष्ट नहीं देखना, काम, क्रोधको शांत रखना और योगाभ्यासीका आभ्यन्तर आचार षट्क्रिया है। आचार[1] धर्म ब्राह्मणको अवश्य पालन करना चाहिये इससे शरीर आरोग्य और मन प्रसन्न रहताहै।

दया-दीनेषु अनुकम्पा दया।

दूसरेको दुःखी देखकर दुःख निवृत्त करनेमें उद्यत होना दया है।

---

१ देवीभा० " आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः। आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हंति पातकम्॥ १॥ आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः। इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥ २॥ आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा। उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता॥ ३॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः। स शूद्रवद्बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः "॥ ४॥ तथा च " आचारहीनं न पुनंति वेदाः॥ "

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।

अपने दुःखके समान दूसरोंका भी दुःख जानना दया है अथवा परोपकार करना । " धन्योऽस्ति को यो हि परोपकारी "

अष्टादशपुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

अठारह पुराणोंमें व्यासजीने दो वचन सारांश रक्खे, पहला तो परोपकारके समान कोई पुण्य नहीं और दूसरा दुःख देनेके समान कोई पाप नहीं । " सर्वप्राणिदया तीर्थमुपकारो महामखः "

श्रुत-विद्या-विज्ञान-आस्तिक्य ।

श्रुतम्-विद्वज्जननिकटे सद्वार्ताश्रवणम् ॥

सत्पुरुषोंके निकट अच्छे वाक्य सुनना और सुनकर विचार करके स्मरण रखना।

श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत् ॥

वह सुनना किस कामका जो धर्मपर न आरूढ हुआ ।

विद्या-वेदाऽध्ययनम् ॥

परिश्रम करके वेद-शास्त्र पढना वृथा काल नहीं बिताना "विद्याविहीनः पशुः "

विज्ञानम्-वैराग्यचिन्तनम्, विविधज्ञानम्, विशेषज्ञानम् ।

वैराग्यका चिन्तन करना, अनेक प्रकारका ज्ञान रखना, तत्त्वको जानना ।

आस्तिक्यम्-गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः ॥

गुरु और वेदांतके वचनोंमें प्रीति रखना, स्वधर्ममें स्थित रहना, जहां तक काम क्रोधादि शमन न हों तहांतक कर्म उपासनाका त्याग नहीं करना, देवतामें अप्रीति नहीं लाना ये सब ब्राह्मणके लक्षण हैं ।

सन्ध्योपासनशीलश्च सौम्यचित्तो दृढव्रतः ।
ऋतुकालाभिगामी स्यादेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥

सन्ध्योपासनमें कुशलता, सरलस्वभाव, दृढव्रत अर्थात् सत् आचरणको नियमसे करनेवाला और ऋतु समयमें ही स्वस्त्री सेवन करना यह ब्राह्मणके लक्षण हैं। ये लक्षण ब्राह्मणमें होनेसे ब्राह्मणकी अप्रतिष्ठा कहीं नहीं होती और कांति, शीलता, शांतता, बाह्य (बाहर) में भासित होतीहै इस तरहके लक्षणोंसे युक्त ब्राह्मणको सभी मान कर सकते हैं और जो ब्राह्मण (अन्य भी कोई) स्वस्त्रीको परित्याग कर परस्त्रीसे प्रीति रखता है वह नष्टताको ही प्राप्त होता जाताहै। जैसा कहा है—

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः। प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्धिः पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः॥

स्त्रियोंके सुवर्णाभूषण और वस्त्रादि वस्तुओंमें जो कि मायासे रची गई हैं उन सबोंमें जो प्रलोभित चित्त मूर्ख मनुष्य भोग करनेकी बुद्धिसे आसक्त होताहै वह नष्टदृष्टि दीपकमें पांखी (पतंगा) के समान नष्ट होताहै और भी कहा है—

**आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं
स्त्रीरत्नं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः[१]॥**

सब सन्देहोंका भंवर, अविनयका घर, साहसोंका शहर, दोष भरे सैकडों कपटोंसे युक्त, अविश्वासका खेत, स्वर्गद्वारका विघ्न, नरकपुरका मुख, सब मायाका डिब्बा यह स्त्रीरत्न अमृतमय विष है प्राणियोंके मोहकी फांसी है।

---

१ भागवते—" शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम्।
हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम्॥ "

स्कान्दे-परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम् ।
न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥

दूसरेकी स्त्रीके सङ्ग भोग करनेसे जो पाप इकट्ठा होताहै वह पाप सैकडों प्रायश्चित्त करनेसे भी नहीं नष्ट होता। और भी कपिलऋषिने अपनी माताके प्रति कहा है कि योगी कभी भी स्त्रीसंग न करे।

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः। मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति यां निरयद्वारमस्य ॥

योगके पार जानेवाला जीव कभी भी स्त्रीका संग न करे, मेरी सेवा करके ईश्वरकी प्राप्ति होतीहै योगिराज स्त्रीको नरकका द्वार कहतेहैं। अभिप्राय यह है कि परस्त्रीगमन जो करताहै उसकी सब प्रकारसे हानि होतीहै बुद्धिमें तमोगुण सर्वदा वर्त्तमान रहताहै, मलिनताका त्याग नहीं होता, चाहे शास्त्री क्यों न हो और जो ब्राह्मण स्वस्त्रीसे ही प्रीति और सन्ध्योपासनमें तत्पर रहताहै उसकी बुद्धि सदा निर्मल बनी रहतीहै कभी दुःखी नहीं प्रतीत होता कारण कि सन्ध्याका बडा माहात्म्य है।

दुराचारियोंकी शोधक सन्ध्या।

याज्ञवल्क्यः-यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः। तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ॥

इस पृथिवीमें जितने द्विजाति दुराचारी हैं उन्हींके शुद्ध करनेके लिये ब्रह्माने स्वयं सन्ध्याको उत्पन्न किया है।

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥

---

१ "किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन च। किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥" देवीभागवते-"अशुचिः स्त्रीजितः शुद्रैश्चितादहनकालतः। न गृह्णंतीच्छया तस्य पितरः पिंडतर्पणम्। न गृह्णंतीव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम् ॥"

रात्रिमें अथवा दिनमें अज्ञानतासे जो पाप होजावे वह त्रिकाल (तीनों काल) सन्ध्या करनेसे सब नाश होजाताहै ।

सन्ध्यासे ब्रह्मलोकप्राप्ति ।

शातातपः–सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥

जो लोग नियम पूर्वक नित्य ही संध्योपासन करते हैं वे निष्पाप होकर निरामय ब्रह्मलोकको प्राप्त होतेहैं ।

संध्या न करनेके दोष।

मरीचिः-सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाऽभिजायते ॥

जो सन्ध्याको नहीं जानता जो सन्ध्याकी उपासना नहीं करता वह जीता हुआ शूद्रके समान और मरनेपर कुत्ता होताहै ।

व्यासः ।

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम् । तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥

इस करके सन्ध्योपासन उत्तम कर्म नित्य करे विना इसके किये दूसरे कर्मका अधिकारी नहीं होता ।

भरद्वाजः ।

सन्ध्योपासनहीनो यो न योग्यः सर्वकर्मसु । तस्मादुपास्य विधिना सन्ध्यामन्यक्रियाश्चरेत् ॥

जो पुरुष सन्ध्या नहीं करता वह किसी कर्मका अधिकारी नहीं होताहै इससे पहिले सन्ध्या विधिसहित करे तब दूसरे कर्मको करे ।

---

१ बृहन्नारदीये–" ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसंध्यादिकर्मणाम् । ते यान्ति नरकान् घोरान् यावदाचन्द्रतारकम् ॥" २ दे०भा०–"संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ "

यमः ।

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र चेष्टितम् ।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥

ये तीन सन्ध्या जो कही गई हैं वे ब्राह्मणके मुख्य कर्म हैं इनको जो ब्राह्मण आदर पूर्वक नहीं करता उसको ब्राह्मण नहीं कहना चाहिये अर्थात् कैसा भी कार्य हो तो भी सन्ध्याको न छोडना चाहिये क्योंकि सन्ध्याविहीन मनुष्य ब्रह्मत्वसे हीन होजाता है ।

विश्वामित्रकल्पे-

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ।

विप्ररूपी वृक्षका मूल तो सन्ध्या है वेद डालियां हैं और धर्म कर्म आदि पत्ते हैं इससे मूल (जड) की रक्षा यत्नपूर्वक करना चाहिये क्योंकि जडके सूखनेसे डाली पत्ते आदि नहीं रहते इसलिये ब्राह्मणको उचित है कि सन्ध्याका परित्याग कभी भी न करे ।

स्वकाले सेविता नित्यं सन्ध्या कामदुघा भवेत् ।
अकाले सेविता सा च सन्ध्या वन्ध्या वधूरिव ॥

जो ब्राह्मण संध्याके कहे हुए कालमें सन्ध्या करताहै उसकी सन्ध्या कामधेनुके समान फल देनेवाली होतीहै और जो समय पर सन्ध्या नहीं करता उसकी सन्ध्या वन्ध्या स्त्रीके समान है ।

सन्ध्या करनेका समय ।

प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रां मध्यमां स्नानकर्मणि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामुपासीत यथाविधि ॥

---

१ " उदयात्प्राक्तनी संध्या घटिकात्रयमुच्यते । सायं सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः ॥ "

प्रातःकालकी सन्ध्या तारे देखते हुए (सूर्योदयसे दो घडी पहिले), मध्याह्नकी मध्याह्न स्नानके अनन्तर और सायं सन्ध्या सूर्य सहित करना चाहिये अथवा प्रहररात्रितक परन्तु प्रमाण कालका संगम तीन ३ घडीका कहाहै ।

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् ।
तावत्सन्ध्यामुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥

उदयसे और अस्तसे ऊपर तीन घडी तक संध्या करना चाहिये इससे अधिक कालमें संध्या करनेसे प्रायश्चित्त होताहै ।

समय बीतजानेपर प्रायश्चित्त ।

कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्घं प्रदापयेत् ।
अथवाष्टशतं देवीं जप्त्वादौ तां समाचरेत् ॥

सन्ध्याका समय थोडा बीतने पर सूर्यको चौथा अर्घ देवे और जो अधिक समय बीत गया हो तो एक सौ आठ १०८ वार गायत्रीका जप कर सन्ध्या प्रारम्भ करे और विशेष बात यह है कि जो काल बीत गया हो तो इस मन्त्रसे कालका आकर्षण कर लेवे ।

ॐ ऋचम्वाचम्प्रपद्ये मनो यजुःप्रपद्ये सामप्राणम्प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये व्वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।

यदि कार्यके कारणसे प्रातःकाल, मध्याह्न काल बीत जावे पश्चात् सावकाश मिले तब स्नान करके शुद्ध हो प्रथम प्रातःसन्ध्या अनन्तर मध्याह्न संध्या करके तब सायं सन्ध्या करे ।

सूतकमें सन्ध्याविचार ।

ग्रन्थान्तरे-सर्वकर्म परित्यज्य सूतके मृतके तथा।
न त्यजेन्मानसीं सन्ध्यां न त्यजेच्छिवपूजनम् ॥

" सूतके " (पुत्रादिके होने पर) मृतक (पितादिके मरने पर) में सब कर्मका त्याग कर देवे परन्तु मानसी सन्ध्या और शिवपूजन न त्याग करे । अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण सन्ध्याका परित्याग कभी न करे । यदि अधिकसे

अधिक भी काल बीत गया हो तो भी सन्ध्या करे, कर्मका नाश नहीं करना चाहिये और मार्गमें शकट (गाडी) आदि पर भी मानसी सन्ध्या समय आने पर कर लेना उचित है। "दूषितोप्याचरेद्धर्ममिति वचनात्" और अपरार्कमें पुलस्त्यका वचन है-

सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् ।
न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥

सन्ध्या और अग्निहोत्र (इष्टि चरु होम यह अग्निहोत्रके अंग हैं) जबतक शरीरमें प्राण हैं तबतक न छोडे, छोडनेसे ब्राह्मण अधोगति (नरक) को प्राप्त होताहै।

देवीभागवते-

यावज्जीवनपर्यंतं त्रिसन्ध्यां यः करोति च ।
स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ॥
न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम् ।
स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसन्ध्यारहितस्य च ॥

जो ब्राह्मण जीवनपर्यन्त त्रिकाल सन्ध्या करताहै वह सदा तपके प्रभावसे सूर्यके समान तेजस्वी होताहै और जो ब्राह्मण तीनों कालकी सन्ध्या नहीं करता उसकी कीहुई पूजाको देवता और पिंड तर्पणको पितर इच्छापूर्वक नहीं लेते हैं।

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्तव्या स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥

ऊख (गन्ना), जल, दूध, कन्दमूल, पान, फल और औषध (दवा) इनको भक्षण करने पर भी स्नान दान आदि शुभकर्म करना योग्य है।

ब्राह्ममुहूर्त ।

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥

---

१ दे० भा०-"तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । जीवन्मुक्तः स तेजस्वी सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ॥"

रात्रिके चौथे पहरका तीसरा मुहूर्त्त ब्राह्म कहाताहै उसमें उठना चाहिये।

देवीभागवते–

पञ्चपञ्च उषःकालः सप्त पञ्चारुणोदयः।
अष्ट पञ्च भवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः॥

पचपन घडीके उपरांत उषःकाल होताहै, सत्तावन घडीके उपरांत अरुणोदय, अठावन घडी पर प्रभात और शेषमें सूर्योदय होताहै।

प्रातःकाल और कृत्य।

प्रातःस्नानं सनक्षत्रं सन्ध्या नक्षत्रसंयुता।
होमः प्रागुदयाद्धानोर्गायत्र्यास्तु ततो जपः॥

प्रातःस्नान और सन्ध्या ताराओंके रहते ही करे और सूर्योदयसे पहिले हवन करे तदनन्तर गायत्रीका जप करना उचित है।

प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं[1] वानप्रस्थगृहस्थयोः।
यतेस्त्रिषवणं प्रोक्तं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः॥

वानप्रस्थ और गृहस्थ प्रातः और मध्याह्नमें स्नान करें और संन्यासीको तीनों काल और ब्रह्मचारीको केवल एकही वार स्नान करना उचित है। यदि ब्रह्मचारी त्रिकाल स्नान करे तो दोष नहीं।

स्नानं[2] विधाय नद्यादौ किंवा तप्तोदकेन च।
मन्त्रस्नानं च वा कृत्वा प्रातःसन्ध्यां समाचरेत्॥

नदी आदिके शीतल जलसे स्नान करे अथवा गरम जलसे स्नान करे यदि ज्वरादिके कारणसे स्नान न कर सके अथवा विशेष जल न प्राप्त हो तो हाथ

---

१ दे० भा०–"अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात्। रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा॥"

२ जाबालिः–"अशक्तावशिरस्कं च स्नानमस्य विधीयते। आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं स्मृतम्॥ अशक्तेन शरीरेण यः स्नानं कुरुते द्विजः। आत्मघातसमं पापमशनवध उच्यते॥"

पांव धोके मन्त्र पढके जलसे शरीर मार्जन करके प्रातःकालकी सन्ध्या करे। आपोहिष्ठेत्यादि मन्त्रोंसे मन्त्रस्नान, दश गायत्री पढकर मार्जन करनेसे गायत्री स्नान, और "अग्निरिति भस्म०" इस मन्त्रसे अथवा द्वादश बार ओंकार पढ कर भस्म लगानेसे उत्तम भस्मस्नान होता है।

देवीभागवते-

जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत्।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः॥

यदि किसी कारणसे जलसे स्नान न करसके तो ईशानमन्त्रसे हाथ पांव और शिरको धोकर भस्मसे स्नान करे अर्थात् विभूति लगाले।

त्रिकालसन्ध्याओंके नाम।

व्यासः-गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने।
सरस्वती च सायाह्ने एवं सन्ध्या त्रिधा मता॥

सन्ध्याका प्रातःकालमें गायत्री, मध्याह्नमें सावित्री और सायंकालमें सरस्वती नाम है।

सन्ध्योपयोगी पात्र।

मरीचिः-गोकर्णाकृतिवत्पात्रं ताम्रं रौप्यं च हाटकम्।
जलं तत्र विनिक्षिप्य सन्ध्योपासनमाचरेत्॥

सुवर्ण, चांदी अथवा तांबेका पात्र गौके कानकी तरह बनवा कर उसे सन्ध्योपासनाके काममें लावे।

जलके अभावमें विचार।

अग्निस्मृतौ-जलाऽभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि।
उभयोः सन्ध्ययोः काले रजसैवार्घ्यमुच्यते॥

जहां पर जल न मिले, वडा रस्ता चलनेमें, बन्धनमें और अपवित्रतामें दोनों सन्ध्याओंविषे धूल (रज-धूर) से ही अर्घ देवे।

यज्ञोपवीतधारण।

हेमाद्रौ देवलः-यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्रालाभे तदिष्यते॥

श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए कामोंके करनेमें दो जनेऊ पहिरना चाहिये यदि अंगौछा न हो तो उसकी जगहमें एक जनेऊ और धारण करे।

मार्कण्डेयपुराणे-नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम्।

एक वस्त्रसे भोजन और देवपूजन न करे।

ओंकार और गायत्री पिता माता।

ॐकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा।
पितरौ यो न जानाति ब्राह्मणः सोऽन्यवीर्यजः॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते॥
गायत्रीं तु परित्यज्य ह्यन्यमन्त्रमुपासते।
सुसिद्धान्नं परित्यज्य भिक्षामटति दुर्मतिः॥

ओंकार यह पितारूप है तैसे ही माता गायत्री है जो ब्राह्मण पिता माताको अर्थात् ओंकार और गायत्रीको नहीं जानता वह वर्णसंकर है। गायत्री वेदकी माता है और गायत्री लोगोंको पवित्र करनेवाली है और गायत्रीसे अधिक जपनेका मन्त्र कोई नहीं है इसीको ज्ञान विज्ञान कहतेहैं। जो ब्राह्मण गायत्री मन्त्रको छोडकर दूसरे मन्त्रकी उपासना करता है वह ऐसा दुर्बुद्धि है जैसे कोई बने हुए भोजनको छोडकर भिक्षा मांगताहै।

विहाय तान्तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः।
शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा॥

जो ब्राह्मण गायत्रीका जप छोडकर केवल विष्णु अथवा शिवकी उपासनामें तत्पर होताहै वह सब तरहसे नरकहीमें जाताहै।

सहस्रं परमां देवीं शतं मध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः स कीर्त्तितः ॥

निरन्तर एक सहस्र (हजार) गायत्री का जप परम श्रेष्ठ है एक सौ यम और दश वार कनिष्ठ पक्षका जप है इसीको जपयज्ञ कहते हैं ।

सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

जितने यज्ञ हैं वे सब गायत्री जपके सोलह भागोंमेंसे एक भागके भी समान नहीं हैं ।

गायत्री जपका फल ।

एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्धा निराश्रयः ।
नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात् ॥
गीरमोघा भवेदेव जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥
त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम् ॥

एक पांवसे खड़ा होकर ऊपरको भुजा उठाये हाथ जोडकर निराश्रय प्राणको रोक कर जप करे रात्रिको हविष्यान्न खाता हुआ वर्ष दिनमें ऋषिताको प्राप्त होताहै, दो वर्ष इस प्रकार जपनेसे सत्य वाणी होती है, तीन वर्ष जपनेसें त्रिकालदर्शी होता है ।

माला विधान ।

तन्त्रे पाद्मेऽपि—अष्टोत्तरशता माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा । शतसंख्योत्तमा माला पञ्चाशन्मध्यमा मता ॥ चतुःपञ्चाशतो यद्वा अधमा सप्तविंशतिः । अधमा पञ्चविंशत्या यदि स्याच्छतनिर्मिता ॥

१०८ एक सो आठ अथवा १०० सौ दानेकी माला उत्तम और ५० वा ५४ दाने की मध्यम और २७ वा २५ दाने (गुरिया-मनिया) की माला अधम कहातीहै ।

देवीभागवते-

अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति ।
वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ॥
मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम् ।
एवं सङ्ग्रथिता माला मन्त्रसिद्धिप्रदायिनी ॥

रुद्राक्षकी मालाके सूत्रमें जैसा गऊके पूंछमें गोल २ गांठ रहतीहैं ऐसी ढाई २ गांठ प्रति दानोंके बीचमें लगाता जाय और रुद्राक्षके दानोंका मुख मुखसे और पुच्छ पुच्छसे मिले रहैं । सुमेरुका मुख ऊपर रहे और उसके ऊपर सर्प जिस आकृतिसे बैठता है ऐसी ग्रंथि लगावे इस प्रकार पुही हुई माला मन्त्रकी सिद्धिको देतीहै ।

पञ्चाशदक्षराण्यत्रानुलोमप्रतिलोमतः ।
इत्येवं स्थापयेत्स्पष्टं न कस्मैचित्प्रदर्शयेत् ॥

पचास (५०) अक्षर अ से क्ष तक होतेहैं इसको सीधे उलटे क्रमसे स्थापित करके जप करे परन्तु गुप्त रक्खे किसीको दिखावे नहीं। जैसे—प्रथम मन्त्र बोले पुनः अं पुनः मंत्र पुनः आं इसी क्रमसे क्षं तक उच्चारण करे। अनन्तर विलोम अर्थात् मन्त्र बोलके पुनः क्षं बोले, पुनः मंत्र, पुनः हं, पुनः मंत्र, पुनः सं इत्यादि क्रमसे अ तक पूरा करे। इस प्रकार शत संख्याकी माला हुई। यदि अष्टोत्तरशत वर्णोंसे जपना हो तो इसी क्रमसे शत पूरे होने पर अं, कं, चं, टं, तं, पं, यं, शं वर्गके आदि अक्षरोंको ग्रहण करे। यह मातृकामाला वर्णमाला करके विख्यात हैं। इस माला पर जपनेसे मंत्र अवश्य सिद्ध होताहै और भुक्ति मुक्तिका दाता है ॥ इसका माहात्म्य गायत्रीस्तवराजमें ऐसा कहा है—

आदिक्षादि सबिन्दुयुक्तसहितं मेरुक्षकारान्तकं
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवर्गसहितं पूर्णं शताष्टोत्तरम् ।
गायत्रीं जपतां त्रिकालसहितां नित्यं स नैमित्तिकी-
मेवं जाप्यफलं शिवेन कथितं सद्भोगमोक्षप्रदम् ॥

वर्णैर्विन्यस्तया यस्तु क्रियते मालया जपः ।
एकवारेण तस्यैव पुरश्चर्या कृता भवेत् ॥

इन वर्णोंकी माला कल्पना करके जो किया जाताहै वह एक ही बारमें उसका पुरश्चरण होजाताहै क्योंकि मन्त्रसहित वर्णोंके जपका माहात्म्य तन्त्रोंमें विशेष कहाहै । यथा योगतत्त्वोपनिषदि--

मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत् ।
क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम् ॥

मातृकासे मिलाहुआ मन्त्रका जप जो बारह वर्ष तक करे तो उसको क्रमसे अणिमादिसिद्धियोंकी प्राप्ति हो ।

आसनविशेष ।

सव्यपार्ष्णिं गुदे स्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि ।
योनिमुद्राबन्ध एष भवेदासनमुत्तमम् ॥

बायें चरणकी एंडी (पार्ष्णि) गुदा स्थान पर लगावे और दहिना चरण उपस्थ (लिंग) के ऊपर रख कर बैठे यह आसनोंमें उत्तम योनिबन्ध आसन कहाताहै । यह सिद्धासनका भेद है ।

योनिमुद्रासने[1] स्थित्वा प्रजपेद्यः समाहितः ।
यं कञ्चिदपि वा मन्त्रं तस्य स्युः सर्वसिद्धयः ॥
छिन्ना रुद्धाः स्तम्भिताश्च मिलिता मूर्च्छितास्तथा ।
सुप्ता मत्ता हीनवीर्या दग्धाः प्रत्यर्थिपक्षगाः ॥
बाला यौवनमन्त्राश्च वृद्धा मत्ताश्च ये मताः ।
योनिमुद्रासने स्थित्वा मन्त्रानेवंविधान् जपेत् ॥
तस्य सिद्ध्यन्ति ते मन्त्रा नान्यथा तु कथञ्चन ।

---

१ घेरंडसंहितायां–"ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रानिबंधनात् ॥"

यदि इस योनिमुद्रासन पर बैठ कर किसी मन्त्रका जप करै तो वह अवश्य सिद्ध होताहै। छिन्न, रुद्ध, स्तम्भित आदि किसी प्रकारका भी दूषित मन्त्र क्यों न हो पर यदि योनिमुद्रासन पर स्थित होकर विधानसे उसका जप करे तो अवश्य वह मन्त्र सिद्ध होताहै, दूसरे प्रकारसे नहीं। और भी योगके ग्रन्थोंमें इस योनिमुद्राका माहात्म्य अधिक वर्णन किया है अर्थात् सब सिद्धियुक्त आत्माका दर्शन होताहै। आसन लिखनेका अभिप्राय यह है कि, विना आसनकी दृढतासे कुछ काल तक बैठा नहीं जाता और न चित्त लगताहै, चंचलता बनी रहती है तब मन्त्र सिद्ध कहांसे होगा ? आसनकी दृढतासे चंचलता (उद्वेग)-का नाश होताहै और चित्तमें एकाग्रता होती है।

गायत्री जपका समय।

पाद्मे-ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्यामध्याह्नं प्रजपेन्मनुम्।
अत ऊर्ध्वं कृते जाप्ये विनाशाय भवेद्ध्रुवम्॥
पुरश्चर्याविधावेवं सर्वकाम्यफलेष्वपि।
नित्ये नैमित्तिके वापि तपश्चर्यासु वा पुनः॥
सर्वदैव जपः कार्यो न दोषस्तत्र कश्चन॥

ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् प्रहर रात्रि शेष रहे तबसे लेकर मध्याह्नपर्यंत जप करना श्रेष्ठ है, इसके अनन्तर जप करे तो कर्ताका नाश होताहै यह सम्पूर्ण कार्योंकि अनुष्ठानका क्रम है। नित्य नैमित्तिक तपश्चर्याका नियम नहीं है अर्थात् दिन प्रतिका अनुष्ठान चाहे जबतक जितनी इच्छा हो जप करता रहे उसमें कुछ दोष नहीं होता और अनुष्ठानमें जपका क्रम ऐसा है।

प्रारम्भदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि।
न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्य्याद्दिनेदिने॥

प्रारम्भके दिनसे लेके समाप्तिके दिन तक ऐसा प्रतिदिन जप करै कि कम और अधिक न हो।

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च ।
नित्यत्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम् ॥
नित्यपूजानित्यदानमानन्दस्तुतिकीर्तनम् ।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥

१ पृथ्वीमें सोना, २ ब्रह्मचर्य्यसे रहना, ३ प्रयोजन मात्र बोलना, ४ नित्य तीनों काल स्नान करना, ५ नीच कामोंको न करना, ६ नित्य पूजा करना, ७ वित्तानुसार नित्य दान देना, ८ आनन्द हो स्तुति करना, ९ इष्टदेवका भजन गाना, १० पर्वादिमें देवपूजन करना, ११ गुरुकी सेवा करना वा ध्यान करना, १२ देवतामें विश्वास रखना अर्थात् देवता अवश्य कृपा करेगा ऐसी भावना रखना ये बारह जपनिष्ठ धर्म मन्त्रसिद्धिको देतेहैं ।

जपनियम ।

याज्ञवल्क्यः--जपस्येह विधिं वक्ष्ये यथाकार्यं वि-
धानतः । नाङ्गं कुर्वन्नापि हसन्न पार्श्वमवलोकयन् ॥ (न चङ्क्रमन्नापि ॥)
नापाश्रितो न जल्पंश्च न प्रावृतशिरास्तथा ।
न पदा पादमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ ॥
नैवंविधं जपं कुर्यान्न च संश्रावयन् जपेत् ।
तिष्ठंश्चेद्वीक्ष्यमाणोऽर्कमासीनः प्राङ्मुखो जपेत् ॥

याज्ञवल्क्य ऋषि जपकी विधि कहतेहैं कि, जप करनेके समय न चले, न हिले, न हंसे, न इधर उधर देखे, न किसी वस्तुकी तकिया लगावे, न किसीसे बात करे, न शिरको ढांके और न पांवसे पांव (पाद) को दबावे, वैसेही हाथसे हाथको न दबावे । इस ऊपर कहे हुए प्रकारसे जप न करे और जपके मन्त्रको दूसरा न सुन सके । यदि खडा होके जप करे तो सूर्यनारायणकी ओर (तरफ) देखे और बैठ कर जप करे तो पूर्वको मुख करके बैठे और भी नियम

इसी ग्रन्थमें ऐसे हैं कि शिर, ग्रीवा (गर्दन) को न हिलावे, दांतोंको न प्रकाशित करे, गीले वस्त्र (आर्द्र) और एक वस्त्र पहिने हुए व नीले वस्त्र और पुराने मैले वस्त्र धारण किये हुए जप न करे और मन्त्र जपकी संख्या करता जावे।

मनोमध्ये स्थितो मंत्रो मंत्रमध्ये स्थितं मनः।
मनोमन्त्रसमायुक्तमेतद्धि जपलक्षणम् ॥

मनमें मन्त्र और मन्त्रमें मन रहै, इस प्रकार मन और मन्त्रका एक साथ योग करके जप करना चाहिये अर्थात् चित्त एकाग्र करके जप करे।

पञ्चदश्याम्—

नियमेन जपं कुर्यादकृतौ प्रत्यवायतः।
अन्यथाकरणेऽनर्थः स्वरवर्णविपर्ययात् ॥

नियमसे जप करे न करनेमें दोष है और अन्यथा करनेमें स्वरवर्णके विपर्ययसे अनर्थ होताहै अर्थात् स्पष्ट उच्चारण करके जप करे शुद्ध रीतिसे उच्चारण न करनेसे वृत्रासुरकी तरह हानि होतीहै।

विश्वामित्रः-

शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्।
अपरैर्न श्रुतः किंचित्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥

जीभ और ओष्ठोंको हिलाता हुआ धीरे २ मन्त्रको जपे परन्तु दूसरेको सुनाई न दे उसको उपांशु जप कहतेहैं और मनहीमें मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण करे वह मानसिक जप है और इसी क्रमसे वचनद्वारा उच्चारण करनेको वाचिक जप कहतेहैं परन्तु जो जप चित्त एकाग्र कर मन्त्रके अर्थको चिन्तन करता हुआ होताहै या जपाधिपति देवताका ध्यान करता हुआ होता है वही जप श्रेष्ठ है।

कात्यायनः-

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम्।
अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः ॥

इसके अनन्तर मैं सन्ध्योपासनकी विधि कहूंगा क्योंकि सन्ध्यासे हीन विप्र सब कर्मोंमें अयोग्य ही होताहै ।

सांख्यायनगृह्ये-

अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते नित्यं वाग्यतः उत्तरपराभिमुखोन्वष्टमादिशमानक्षत्रदर्शनात् । अतिक्रान्तायां महाव्याहृतीः स्वस्त्ययनान्यपि जप्त्वा। एवम्प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात् ॥

यज्ञोपवीत धारण किया हुआ पुरुष वन (जंगल-एकांत स्थान नदी तट देवालय)में कुशा हाथमें लिये हुए नित्यही वार्तालापको छोडकर उत्तर पश्चिम अर्थात् वायुकोणकी ओर मुख किये हुए ताराओंके उदय पर्यन्त सायंकाल सन्ध्याकी उपासना करे । यदि सन्ध्याकाल बीत गया हो तो महाव्याहृति गायत्री और स्वस्तिवाचन मन्त्रोंको जप कर सन्ध्योपासन करे । ऐसेही प्रातःकाल पूर्वदिशाकी ओर मुख किये हुए सूर्योदय पर्यन्त सन्ध्योपासन करे ।

अब आगे सन्ध्याका अनुक्रम कहके सन्ध्या करनेकी विधि लिखूंगा-

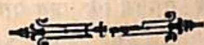
सन्ध्या करनेका अनुक्रम ।

स्नान करके धोया हुआ वस्त्र पहिन कर एक उपवस्त्र (दुपट्टा-अंगोछा) ले, आसन पर बैठ सावधान हो सन्ध्या करे । प्रथम भस्म लगावे, आचमन कर, रुद्राक्ष पहिने, कुश पवित्री धारण कर हृदयादि शुद्ध करे । अनन्तर संकल्प करके आसनशुद्धि करता हुआ उक्त प्रमाणसे चुटैया (शिखा) बांधे पश्चात् यथाविधि भूतशुद्धि कर कलशशुद्धि (जलको उक्त मार्गसे अभिमंत्रण) करे । अनन्तर " ऋतं च सत्यं " मन्त्रसे तीन आचमन कर प्राणायामका विनियोग करता हुआ प्राणायाम करे । पुन :" सूर्य्यश्च " इस मन्त्रसे तीन आचमन कर " आपोहिष्ठा " इत्यादि मन्त्रसे मार्जन करे । पश्चात् "द्रुपदादिव" मन्त्रको तीन वार पढ जल शिर पर छोड, पुनः "ऋतं च सत्यं" मन्त्रसे अघमर्षण (नासिकामें जल लगाना) करे। तदनन्तर "अन्तश्चरसि" मन्त्रसे आचमन कर (यहां एक ही आचमन करना चाहिये, ऐसा मेरेको स्मरण है) सूर्य भगवान्को जल,

चन्दन, अक्षत, पुष्प सहित तीन अर्घ्य देवे। पश्चात् दो या सात प्रदक्षिणा कर सूर्यका उपस्थान (स्तुति) उक्त ४ मन्त्रोंसे करे, अनन्तर बैठकर गायत्री मन्त्रसे दो प्राणायाम कर न्यास करता हुआ गायत्री मन्त्र जपनेके निमित्त विनियोग करे। पश्चात् "तेजोसि" मन्त्रसे आवाहन कर, "गायत्र्येकपदी" मन्त्रसे गायत्रीका उपस्थान करे। पुनः शापमोचन करके २४ मुद्राओंको कर गायत्री मन्त्रसे तीन आचमन करता हुआ सावधान हो यथाशक्ति जप करे। जपके अनन्तर गोमुखी शिर पर रख तीन आचमन कर आठों मुद्राओंको करे। अनन्तर गुह्यातिगुह्य वाक्यसे जलछोड गायत्रीमन्त्रसे षडङ्गन्यास करे। पश्चात् गोमुखी शिर परसे उतार "एकचक्रः" मन्त्रसे सूर्यकी स्तुति करे। अनन्तर जल लेकर सन्ध्या कर्मका अर्पण करे। पश्चात् विसर्जन करके शिखाकी ग्रन्थिको छोडके पुनः बांध लेवे। अनंतर लघु प्राणायाम कर कवचादिका पाठ करना हो तो करे। उठते समय आसनके नीचे जल छोडकर मृत्तिका (मिट्टी) ललाटमें किंचित् लगा लेवे या स्पर्श करे।

इति सन्ध्याऽनुक्रम ॥

सन्ध्याप्रारम्भ ।



आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणी ।
सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसन्ध्ये ते नमोस्तु ते ॥

श्रुतिः—अहरहः सन्ध्यामुपासीत ।

नित्य प्रति सध्न्यावन्दन [illegible]

यथोक्तस्नानानन्तरं धौतं वस्त्रं परिधायोपवस्त्रं गृहीत्वानन्तरं कृष्णाजिने वा कुशासने ऊर्णासने वा

---

१ कृष्णाजिने भवेन्मुक्तिः ज्ञानवृद्धिः कुशासने ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यः कम्बलासने ॥

शुचिस्थले स्वतिकादौ वा आसनविधिना प्राङ्मुख उपविश्य पश्चात्सन्ध्योपासनमारभेत् ॥

स्नान करके शुद्ध सूखा वस्त्र पहिन अंगौछा ले मृगचर्म या कुशासन या ऊनके आसनपर बैठ पूर्व या उत्तर मुख हो सन्ध्या करे।

भस्मधारणमन्त्र।

ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्व ँ

---

१ पाद्मे—वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंयुतः।
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेन्द्रियः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्।

यह भस्म अग्निका वीर्य है इस करके पक्षपात रहित हो सबको भस्म धारण करना उचित है चाहे वैष्णव, शैवादि कोई भी हो. क्योंकि विना अग्निके किसीका भी निर्वाह नहीं होता जैसा कि कोई पर्वादिक आने पर कुछ न कुछ हवन करना ही पडता है उस समय हवनके अन्तमें ललाटादिमें भस्म अवश्य धारण करना पडता है (त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटेति) तब संन्ध्यामें क्यों न धारण करना और देखिये कि जब पाक (रसोई) होताहै तब सब पदार्थोंमें भस्म (अग्निवीर्य) उड २ के पडतीहै अर्थात् कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें भस्म न पडती हो वह पदार्थ भक्षण किया जाताहै फिर सन्ध्यामें क्यों न लगाना, इसमें पक्षपात कुछ नहीं है। हां, सन्ध्याके पश्चात् देवार्चन करके जो चन्दन देवताका उच्छिष्ट (शेष) बचा हो उसको संप्रदायानुसार त्रिपुण्ड्र वा ऊर्ध्वपुंड्र धारण करे–" प्रातः ससलिलं भस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम्। सायाह्ने निर्जलं भस्म एवं भस्म विलेपयेत्॥ " देवीभा० ए०– " यथोपवीतरहितैः सन्ध्या न क्रियते द्विजैः॥ तथा सन्ध्या न कर्त्तव्या विभूतिरहितैरपि। अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना। सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम्॥ एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्सन्ध्याकालेषु सादरम्॥ " कात्यायनः–" श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने। धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः॥ मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य च॥ त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान् सर्वकल्मषनाशनम्॥ भविष्यपुराणे–" सत्यं शौचं तपो होमस्तीर्थदेवादिपूजनम्। तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्॥ " स्कान्दे–" अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्मनोद्धूलनं तथा। त्रिपुण्ड्रधारणं साक्षाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥ "

ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षू ७ षि भस्मानि। ॐ प्रसद्य भस्मना योनिमपश्चपृथिवीमग्ने सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वञ्ज्योतिष्मानपुनरासदः-ॐ भवाय नमः ललाटे। ॐ शर्वाय नमः हृदि। ॐ रुद्राय नमः कण्ठे ॐ पशुपतये नमः दक्षिणबाहौ। ॐ उग्राय नमः वामबाहौ। ॐ महादेवाय नमः पृष्ठे। ॐ भीमाय नमः शिरशि। ॐ ईशाय नमः गुह्ये। एतैर्मन्त्रैर्ललाटाद्यङ्गेषु भस्म धारयेत्।

इस मन्त्रसे ललाट आदि अंगोंमें भस्म लगावे।

भस्मोद्धूलितहस्तेन त्रिराचम्य।

भस्म लगे हुए हाथसे तीन आचमन गायत्रीसे करके अंगूठेकी जडसे ओंठको पोंछकर नासिका और दहिने कानको जलसे स्पर्श करे, परन्तु आचमन ऐसा करे कि, दहिने हाथमें जल ले कनिष्ठिका अंगुष्ठको छोड और बायें हाथकी तर्जनीको लगाके तब आचमन करे यह आचमनकी मुद्रा है।

आचमनमन्त्र।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं स्वाहा ॐ भर्गो देवस्य धीमहि

---

१ श्रौताचमनम्-त्रिवारं जलप्राशनं त्रिपदया गायत्र्या आपोहिष्ठेत्यादिजल्पनं ससव्याहृतीनामुच्चारणम्। अंते च गायत्रीशिरःपाठः (देव्याः पादैस्त्रिभिः पीत्वेति विश्वामित्रकल्पे) स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद्वाससी परिधाय च॥ दक्षिणेनोदकं पेयं दक्षं वामेन संस्पृशेत्। तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन युज्यते॥ नागदेवः-" संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः। मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत्॥ दक्षिणे च स्थितं तोयं तर्जन्या सव्यपाणिनः। तत्तोयं संस्पृशेद्यस्तु सोमपानसमं स्मृतम्॥" आचमनार्थे शीतोदकं ग्राह्यम्-गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्॥ याज्ञवल्क्यः-त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत्॥

स्वाहा ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥

इसके अनन्तर कण्ठमें **रुद्राक्ष**[1] पहिने।

मंत्राः-ॐ अघोरहैं अघोरतरङ्गहौं हीं नमस्ते रुद्राक्षरूपाय हैं फट् स्वाहा। ॐ ब्रह्मा मुखे विष्णुर्मध्ये कण्ठे रुद्रः समाचरेत् । रोमे रोमे च देवानां रुद्रदेव नमोस्तु ते । वा, त्र्यम्बकं यजामहेति मानस्तोकेन मंत्रेण वा धारयेत् ॥

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्रसे कुश **पवित्र धारण**[2] करे।

मन्त्राः-ॐ पवित्रेस्थो व्वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनस्तच्छकेयम् ॥

---

१ स्कान्दे-केवलानपि रुद्राक्षान्यथालाभं बिभर्ति यः । तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ (दे० भा०) अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥ रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः । रुद्राक्षधारणं श्रेष्ठं न किंचिदपि भिद्यते ॥ पाद्मे-नरो भस्मसमायुक्तो रुद्राक्षान्यस्तु धारयेत् । महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥

२ मार्कण्डेयः-चतुर्भिर्दर्भपिंजूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥ हारीतः-उभयत्र स्थितैर्दर्भैः समाचमति यो द्विजः । सोमपानं फलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं भवेत् ॥ स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने ॥ यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा । त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ॥ कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमबिल्वजाः । सुवर्णं रजतं ताम्रं दश दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥ यह कुश पवित्र करताहै इसको धारण करनेसे जल तीर्थरूप होजाताहै उच्छिष्टादिका भेद नहीं रहता । व्यासः-कुशैः पूतं भवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेज्जलम् । कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानेन संमितम् ॥ त्याज्यकुशाः-अपूता गर्भिता दर्भा ये चान्ये छेदिता नखैः । मार्गजा अग्निदग्धाश्च कुशान् यत्नेन वर्जयेत् ॥

इस मंत्रसे पवित्री पहिन कर बाएं हाथमें तीनसे अधिक और दहिने हाथमें पवित्री सहित तीन कुश लेवे अनंतर हृदयादि पवित्र करे। यथा—

ॐ विष्णुर्विष्णुः ॐ वाग्वाक्। ॐ प्राणःप्राणः। ॐ चक्षुश्चक्षुः। ॐ श्रोत्रंश्रोत्रम्। ॐ नाभिः। ॐ हृदयम्। ॐ कण्ठः। ॐ मुखम् ॐ शिरः। ॐ शिखा। ॐ बाहुभ्याम्। यशोबलम्।

इन स्थानोंको स्पर्श करे।

अपवित्रः पवित्रो वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। गायत्री छन्दः। विष्णुर्देवता। हृदि पवित्रकरणे विनियोगः। ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ॐ भूः पुनातु शिरसि। ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः। ॐ स्वः पुनातु कण्ठे। ॐ महः पुनातु हृदये। ॐ जनः पुनातु नाभ्याम्। ॐ तपः पुनातु पादयोः। ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

इस मंत्रोंसे शरीरके ऊपर कुशसे जल छिडके इसके अनंतर सन्ध्या करनेके लिये संकल्प करे। यथा—

संकल्पः—आदौ तिथिवारादि उच्चार्य्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसन्ध्योपासनमहं करिष्ये। "पुनर्भूशुद्ध्यादिप्रयोगः कर्तव्यः"

इसके अनंतर पृथ्वी शुद्ध करे (आसनशुद्धि) यथा--

नमस्कारः । दक्षिणे ॐ सरस्वत्यै नमः । ॐ शङ्ख-निधये नमः । वामभागे ॐ लक्ष्म्यै नमः । ॐ पद्म-निधये नमः ॥ आसनम् ॥ पृथिव त्वयेति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषि[2]ः । सुतलं छन्दः । कूर्मो देवता । पृथिवी बीजम् । आकाशः शक्तिः । अन्तरिक्षं कीलकम् । आसने विनियोगः ॥

ॐ पृथिव त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इस मन्त्रको पढ कर आसनके नीचे जल छिडके या हस्तसे स्पर्श करे ।

प्रार्थना-ॐ विश्वशक्त्यै नमः । ॐ महाशक्त्यै नमः । ॐ कूर्मासनाय नमः । ॐ योगासनाय नमः । ॐ अनन्तासनाय नमः । ॐ विमलास-नाय नमः । मध्ये । ॐ परमसुखासनाय नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः आत्मासनाय नमः ॥ अनेन मन्त्रेण पुष्पादिना आत्मनः आसनदानम् । ततो गायत्र्या शिखां[3] बद्ध्वा ।

---

१ व्यासः-कौशेयं कम्बलं चैव आसनं पट्टमेव च । दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत् ॥ २ व्यासः-अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च । योऽध्यापयेद्याजयेद्वा पापीयाञ्जायते तु सः ॥ ३ स्मृत्वा चोंकारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा । स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने । शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन ॥ आसने शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने । शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत् ॥ परन्तु खल्वाटने कुशकी शिखा बनाना । संस्कारभास्करे-खल्वाटादिकदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् । कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रंथियुतां शिखाम् ।

इस मन्त्रसे गन्धाक्षत पुष्प आसनके बीच भागपर छिडके । इसके अनन्तर गायत्रीसे चुटैया बांधे दूसरा भी मन्त्र बोले । यथा-

चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेजःसमन्विते ।
तिष्ठ देवि शिखाबन्धे तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥

अनन्तर **दिग्बन्धन** करे । यथा-

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ।
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ॥
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ।

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्रसे अपने चारों तरफ तीन ताल बजाके चुटकी बजावे । यथा-

सर्वभूतनिवारकाय शार्ङ्गाय सशराय सुदर्शनाया-स्त्रराजाय हुं फट् स्वाहा । ततः स्वदक्षिणभागे ॐगुरुभ्यो नमः । ॐपरमगुरुभ्यो नमः । ॐपरमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । ॐपूर्वसिद्धेभ्यो नमः । ॐआचार्येभ्यो नमः । स्ववामभागे-ॐगणेशाय नमः । ॐदुर्गायै नमः । ॐक्षेत्रपालाय नमः । ॐ योगिनीभ्यो नमः । ॐ क्षेत्रेशाय नमः ॥

ऊपर लिखे हुए नामोंसे अपने दक्षिण वामभागमें गंधाक्षत पुष्पसे पूजन करे "अपसर्पन्तु०" इस मन्त्रसे बायें पादकी एँडी (पार्ष्णि) से तीन बार भूमिमें ताडन (मारना-प्रहार) करे । अनन्तर भूतशुद्धि । यथा-

भूरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मातृका देवता । प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः । भूशुद्धौ विनियोगः ।

अनंतर भूमिमें हाथ रखकर आगे लिखे हुए मन्त्रको पढे ।

ॐभूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृꣳह पृथिवीम्माहिꣳसीः ।

तदनंतर भैरवको नमस्कार करे-

यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । नारायणो देवता । भैरवनमस्कारे विनियोगः । ॐ यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः । यऽईशे महतोमहाꣳस्तेन गृह्णामित्वामहं गृह्णामि त्वामहम् ।

इति आसनक्रमः ।

भूतशुद्धि[२] ।

स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा संमीलितनयनयोर्मू-

---

१ यह आसनका क्रम सारांश लिखा गया है गायत्रीके अनुष्ठानवालेको या अन्य प्रकारके अनुष्ठान करनेवालेको अत्यन्त उपयोगी है जिससे इतना आसनका क्रम न होसके तो वह ' पृथिवीत्वयेत्यारभ्य पवित्रं कुरु चासनम् ' पर्यन्त ही तक कर लेवे ।

२ भूतशुद्धिं विना देवि नाचमन च सिद्धिदम । प्राणायामं ततः प्रोक्तं तस्माद्भूतविशोधनम् ॥ भूतशुद्धि बिना किये आचमन करनेको भी अधिकार नहीं है, जिन पुरुषोंसे न होसके वे युग्म (दो) प्राणायाम करके तब सन्ध्या या अन्य कर्मका प्रारम्भ करें परन्तु देवार्चनमें तो अवश्य करना चाहिये ॥ देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् । देवार्चायोग्यताप्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ भूतशुद्धिके सदृश दूसरा कर्म कुछ नहीं है क्योंकि यह योगमार्ग है विना योगसे अन्तःकरणकी शुद्धि, जीवात्मा परमात्माका योग नहीं होता । विना साधन किये स्वाद नहीं मिलता । केवल पाठही करनेसे अन्तःकरणका भ्रम नहीं निवृत्त होता ।

लाधारात् कुंडलिनीं बिसतंतुतनीयसीं तडित्कोटिप्रभां सोमसूर्याग्निरूपिणीं हुमिति सचेतनां विधाय सुषुम्नामार्गेणोत्थाप्य हृदम्बुजे हंस इति जीवेन सह ब्रह्मरन्ध्रांतः परमशिवे संयोज्य पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धब्रह्म-विष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवनिवृत्तिकलाप्रतिष्ठयकलाविद्या--कलाशीतिकलाशीत्यतीताकलाप्रकृतिमनोबुद्ध्यहङ्कारवचनादानगमनविसर्गानन्देति तत्त्वानि तत्र लीनानि विचिन्त्य भुवं जले, जलमग्नौ, अग्निं वायौ, वायुमाकाशे, आकाशमहङ्कारे, अहंकारम्महत्तत्त्वे, महत्तत्त्वं प्रकृतौ,प्रकृतिमात्मनि विप्रलाप्य वामकुक्षिस्थपापं ध्यायेत्—

ब्रह्महत्याशिरःस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ।
सुरापानं च हृदयं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥
तत्संसर्गपदद्वन्दमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
खड्गचर्मधरं क्रुद्धमधश्वक्रं स्मरेत्ततः ॥

यमिति वायुबीजं कृष्णवर्णं वा मनसि विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन पूरकं तस्य चतुष्षष्टिवारजपेन कुम्भकं, तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन पापं संशोष्य दक्षनासया रेचनं कुर्यात् । रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं दक्षनसि विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन

पूरकं, तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा सदेहं पापं संदह्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन तद्भस्मना रेचयेत् ॥ ठमिति चन्द्रबीजं ललाटे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन वामनासया पूरयेत्।वमिति वरुणबीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य तस्य चतुष्षष्टिवारं जपेन कुम्भकं कृत्वा तदुद्भवामृतेन प्लावयेत्, लमिति पृथिवीबीजं पीतवर्णं विचिन्त्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षनासया रेचयेत् । सोहमिति कुण्डलिनीं जीवेन सह तेनैव मार्गेण स्वस्थाने समानयेत्ततस्तत्त्वानि च क्रमेण स्वस्थाने समानयेत् । इति । संक्षेपतो भूतशुद्धिः[1] ॥ ततो जलपूरितकलशोपरि हस्तौ संस्थाप्य ब्रूयात्[2] । यथा–

इसके अनन्तर कलश (जलपात्र) में तीर्थोंका आवाहन करे, जलपात्र (लोटा) के ऊपर हाथ रखकर आगे लिखे हुए मन्त्रोंको बोले । जैसे–

---

१ यह भूतशुद्धि संक्षेपमें लिखी गई, स्वाङ्कसे समानयेत् पर्यन्त उच्चारण करनेमें जो जो विषय कहा है उसको साधक शनैःशनैः क्रमसे भावना किया करै । करते २ कुछकालमें इसका अनुभव भासित होने लगताहै तब इसका स्वाद मालूम होगा । यदि शीघ्रताकी इच्छा हो तो गुरुके समीप कुछ काल अभ्यास करे तब इसका आनन्द अच्छे प्रकारसे मालूम होगा परन्तु इसका स्वाद शीघ्रकारी आलसी पुरुषोंको नहीं मिल सकता । २ कलशमें तीर्थोंका आवाहन करनेको यदि कोई पुरुष कहै कि क्या देवपूजा करनाहै ? तो क्या सन्ध्या किसी देवपूजासे कम है ? कि जिसमें जल ही प्रधान है अर्थात् कहीं आचमन कहीं मार्जन और कहीं अर्घ्यादिक हैं ये सब कर्म जलसे ही होतेहैं और इन्हींसे शरीरके वाह्याभ्यन्तरके मल दूर होतेहैं, इससे जलशुद्धि अवश्य ही करना चाहिये विना जलशुद्धिके कोई भी कर्मकांड सिद्ध नहीं होता । यदि सब न होसके तो गायत्रीसे जल अभिमंत्रित करलेवे और नदीतट पर सन्ध्या करना होवे तो वहां भी गायत्रीसे जल अभिमंत्रित करलेवे यह कर्मकांडकी मर्यादा है ।

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥
कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥

इत्यावाह्य वरुणमावाहयेत् ।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणाव्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशँ समानऽआयुः प्रमोषीः ॥ अस्मिन्कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि । कलशदेवताभ्यो नमः । गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि । धेनुमुद्रां प्रदर्श्य–

इस आवाहित जलसे शरीर पर मार्जन करके सन्ध्या कर्मका आरम्भ करे अर्थात् आगे लिखे हुए मन्त्रोंसे आचमनादिक करे । प्रथम आचमनका मन्त्र यह है–

विनियोगः–

अघमर्षणसूक्तास्याघमर्षण ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। भाववृतो देवता । अश्वमेधावभृथे विनियोगः ॥

मन्त्रः--

ॐ ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि

संवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्व्वम-कल्पयत् दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।[१]

इस मन्त्रको पढकर तीन आचमन करे अनन्तर विनियोग करके प्राणायाम करे । यथा—

विनियोगः--

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः ।

सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वदेवा देवताः अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः॥ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्रीछन्दः । सविता देवता । अग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः ॥

शिरसः प्रजापतिऋषिस्त्रिपदा गायत्री च्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्य्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

जहां कहीं विनियोग शब्द आवे वहां जल छोड देवे ।

---

१ आपस्तम्बः—अकार्यकरणे चैव अभक्षस्य च भक्षणे ।
अघमर्षणसूक्तेन पीत्वापः शुद्ध्यते द्विजः ॥
मनुः—यथाऽश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

प्राणायाममन्त्र[1]।

ॐ भूः ॐ भुवः स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

---

१ पद्मासन या स्वस्तिकासनसे बैठकर सावधानतासे शरीरको सीधा कर आंख मूंद (नयनोन्मीलित) नासिकाके दहिने छिद्रको दहिने हाथके अंगूठासे दाबकर वामनासिकाके छिद्रसे धीरे २ श्वासको खींचे। श्यामवर्ण चतुर्भुज विष्णु भगवानका ध्यान नाभिदेशमें करता हुआ श्वास पूरे होते होते तीन बार मनमें मन्त्रका उच्चारण करे। अनन्तर अनामिका मध्यमासे बायें छिद्रको भी दाबकर उसी खींची हुई श्वासको रोककर हृदयमें कमलासन पर बैठे हुए रक्त वर्ण चतुर्मुख ब्रह्माजीको ध्यान करता हुआ उसी मन्त्रको पुनः तीन बार उच्चारण करे। अनन्तर उस रुकी हुई श्वासको अंगूठेको क्रमसे छोड दहिने छिद्रसे धीरे २ माथे (ललाट) में श्वेतवर्ण त्रिनेत्र श्रीशिवजी महाराजका ध्यान करता हुआ तीन बार मन्त्रका उच्चारण करते २ छोडे (यह एक प्राणायाम हुआ) परन्तु प्राणायाम दोसे कम न करना चाहिये। पुनः दहिने छिद्रसे उसी श्वासको खंडित न करके पहिलेकी तरह खींचे (पूरक) पुनः रोक वामसे छोडे यह प्राणायामका क्रम है अधिक करना हो तो श्वासको खंडित न करके लोम विलोम क्रमसे करता जावे ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः । शोचमानस्त्वहोरात्रं प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥ यथा पर्वतधातूनां दोषान्हरति पावकः । एवमन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते ॥ कात्यायनः—दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् । कुम्भकेन जपं कुर्यात्प्राणायामो भवेदिति ॥ बाह्यवायोरन्तःप्रवेशनं पूरकः। प्रवेशितस्य धारणं कुम्भकः। धृतस्य बहिर्निःसारणं रेचकः । प्र० पारिजाते—पञ्चांगुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन वै । मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः । " यह योग विषयक है "—पांचों अंगुलियोंसे नासिकाको दाब अर्थात् वायुको न खींचे (पूरक) न छोडे (रेचक) शुद्ध कुम्भक कर प्रणवका जप करे " कालस्य नियमो नास्ति " सामर्थ्यपर्यन्तं धारणं कर्तव्यमेव पापघ्नी मुद्रा ॥ अगस्त्यः—प्रणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम् । अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना ॥

प्राणायामके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्रसे तीन आचमन करे।

विनियोगः–

सूर्यश्चमेति ब्रह्मा ऋषिः। प्रकृतिश्छन्दः। सूर्यो देवता। अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

मन्त्रः–

ॐ सूर्य्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

इसके अनन्तर कुशसे मन्त्रोंके सात भागोंसे शिर पर आठवेंसे भूमिपर पुनः नववेंसे शिर पर मार्जन करे। यथा--

विनियोगः–

आपोहिष्ठेत्यादित्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। गायत्रीच्छन्दः। आपो देवता। मार्जने विनियोगः।

---

१ देवीभा०–" तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः।
अन्तःकरणसंभिन्नं पापं तस्य विनश्यति॥ "

२ छ० प०–रक्षार्थं वारिणात्मानं परिक्षिप्य समन्ततः। शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकबिन्दुभिः। अङ्गिराः–मार्जनं तर्पणं श्राद्धं न कुर्याद्वारिधारया। कुर्याच्चेद्वारिधाराभिस्तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥ याज्ञवल्क्यः–सर्वतीर्थाऽभिषेकं च ह्यूर्ध्वं संमार्जनाद्भवेत्। अधोभागे विसृष्टाभिरसुरा यान्ति संक्षयम्॥ नारायणोपनिषदि–ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोमम्प्राप्नुवन्ति। भ्रूणहत्यां वा एते घ्नन्ति आसहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति। देवीभा०–" नश्येदघं मार्जनेन संवत्सरसमुद्भवम्।" ऋग्विधाने–नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठेत्यृचेन तु। संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति॥ "

मन्त्रः—

ॐ आपोहिष्ठामयोभुवः १ ॐ तानऊर्जेदधातन २ ॐ महेरणाय चक्षसे ३ ॐ यो वः शिवतमो रसः ४ ॐ तस्य भाजयतेह नः ५ ॐ उशतीरिव मातरः ६ ॐ तस्मा अरङ्गमामवः ७ ॐयस्य क्षयाय जिन्वथ ८ ॐ आपोजनयथा च नः ९।

इसके अनन्तर हाथमें जल ले "द्रुपदादि" मन्त्रको तीन बार पढ कर उस जलको शिरपर छोडे, परन्तु तीसरी बारमें मन्त्रका अन्त होते दूसरे हाथसे जलको ढाँप तब शिर पर छोडे। यथा–

विनियोगः—

द्रुपदादिवेतिकोकिलो राजपुत्र ऋषिः। अनुष्टुप्छन्दः। आपो देवता। सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः।

मन्त्रः—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥

इसके अनन्तर हाथमें जल ले नासिकामें लगाके मन्त्रको तीन बार या एक बार मनसे उच्चारण करता हुआ नासिकाके दहिने छिद्रसे वायुको खींचे अनन्तर उस वायुको वाम छिद्रसे पाप बहिर्गत हुआ ऐसा स्मरण करता हुआ छोडे। पुनः उस जलको न देखकर वाम भागमें पटक (छोड) दे। यदि जलको भी वायुके संग खींच बामसे छोडे तो उत्तम पक्ष है (ऐसा होसकता है, कुछ लोग करते भी हैं)।

---

१ याज्ञवल्क्यः–पुण्या अपः समादाय त्रिःपठेद्द्रुपदादिवम्। तत्तोयं मूर्ध्नि विन्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ द्रुपदा नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया॥

विनियोगः—

अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षण ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । भाववृतो देवता । अश्वमेधावभृथे विनियोगः ।

मन्त्रः—

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्रिरजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्व्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्रसे आचमन करे ।

विनियोगः—

अन्तश्चरसीति तिरश्चीनऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । आपो देवता । अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥

मन्त्रः—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥

इसके अनन्तर गन्धाक्षतपुष्प सहित सूर्यनारायणको गायत्री पढकर ३अर्घ्य देवे परन्तु तर्जनी अंगूठेको अंजलीमें स्पर्श न करे ।

विनियोगः—

ॐ महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिऋषिः । गा-

---

१ शौनकः—उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जले गोकर्णवत्कृते । निष्कास्य नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत् ॥ ऋतञ्चेति त्र्यृचं वापि द्रुपदां वा जपेदृचम् । दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्॥ तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत् । कात्यायनः—करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च ॥ जपेदनियताः सर्वास्त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥

यत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि । अग्निवाय्वादित्या देवताः । गायत्र्या विश्वामित्रऋषिः । गायत्रीछन्दः । सविता देवता । सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः ।

अर्घ्यमन्त्र ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ।

इसके अनन्तर दो या सात प्रदक्षिणा करके एक पैरसे हाथ जोड या अञ्जली करके आगे लिखे हुए मन्त्रसे सूर्यका उपस्थान (स्तुति)करे । (कहीं

---

१ व्यासः–कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं सन्ध्ययोः क्षिपेत् ॥ सकृदेव तु मध्याह्ने क्षेपणीयं द्विजातिभिः । (संग्रहे) गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम्॥ प्रणवाढयां जपंस्तिष्ठन्प्रक्षिपेद्वाञ्जलित्रयम्॥ कात्यायनः–उत्थायार्कं प्रतिप्रोहेत्त्रिकेनांजलिनाम्भसा । देवीभागवते–" उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ समौ सन्नियोजयेत् । जलाञ्जलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यंगुष्ठवर्जितम् । वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोर्घमोचने । ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमंत्रतः ॥ " अन्यच्च–प्रातर्मध्याह्नयोः सन्ध्यां तिष्ठन्नेव समापयेत् । उपविश्य तु सायाह्ने जले ह्यर्घ्यं न निक्षिपेत् ॥ एकं वाहननाशाय द्वितीयं शत्रुनाशनम् ॥ असुराणां वधार्थाय तृतीयार्घ्यं विदुर्बुधाः । वायुपुराणे–" ॐ कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । तेन दह्यंति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ॥ " तैत्तरीयश्रुतिः–ता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मंदेहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति ॥ " अर्घ्यमुद्रा–संग्रहे–मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत् । तर्जन्यंगुष्ठयोगे तु राक्षसी मुद्रिका स्मृता । राक्षसीमुंद्रिकार्घ्ये चेत्तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥ द्वौ पादौ तु समौ कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलीन् । गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ (तीनों अर्घ्यका विनियोग, न्यास, ध्यान, मंत्र अन्य प्रकारका तंत्रोक्त मेरे पास है परन्तु संकेतके कारण लिख नहीं सकता । ब्रह्मपुराणे–यावन्न दीयते चार्घो भास्कराय निवेदितः । तावन्न पूजयेद्विष्णुं शंकरं च महेश्वरीम् ॥

२ एका चण्डया रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके । हरेश्चतस्रः कर्तव्या शिवस्यार्धं प्रदक्षिणा ॥ बह्वृचपरिशिष्टे–एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये तिस्र ईश्वरे । चतस्रः केशवे कुर्यात्सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः ॥

उपस्थानके अनन्तर प्रदक्षिणा करना कहा है और कहीं गायत्री जपके पश्चात् प्रदक्षिणा कही है)

विनियोगः--

उद्वयमित्यस्य हिरण्यस्तूपऋषिः। गायत्री छन्दः। सूर्यो देवता। सूर्योपस्थाने विनियोगः।

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्वऋषिः। गायत्रीछन्दः। सूर्यो देवता। सूर्योपस्थाने विनियोगः।

चित्रमित्यस्य कौत्सऋषिः। त्रिष्टुप्छन्दः। सूर्योदेवता। सूर्योपस्थाने विनियोगः।

तच्चक्षुरित्यक्षरातीतपुरउष्णिक् छन्दः। दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। सूर्यो देवता। सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः--

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः परिपश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्ज्योतिरुत्तमम्।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्।

---

१ (याज्ञवल्क्यः) गायत्र्यास्तु जपं कृत्वा पूर्वं चैव यथाविधि। उपस्थानं स्वकैर्मन्त्रैरादित्यस्य तु कारयेत्। उदुत्यं चित्रं देवानामुद्वयन्तमसस्परि। तच्चक्षुर्देव इति च एकचक्रेति वैधि च॥ उदगादित्ययं मंत्र आकृष्णेनेति वै ऋचा। तृप्तात्मा संप्रयुञ्जीत शक्त्यान्यानि जपेत्सदा॥ सन्ध्याद्वयेप्युपस्थानमेवमाहुर्मनीषिणः॥ मध्याह्ने उदये चैव विभ्राडादीच्छया भवेत्॥ तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एकपादो द्विपादपि। जपेत्कृताञ्जलिर्वाऽपि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा॥ अत्रिः--आदित्योपस्थानादिह कृतैश्च पापैः प्रमुच्यते। अन्यच्च--"हस्ताभ्यां स्वस्तिकं कृत्वा प्रातस्तिष्ठद्दिवाकरम्। मध्याह्ने तु ऋजुं बाहुं सायं मुकुलितौ करौ॥"

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुमाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदःशतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

इसके अनन्तर बैठकर आगे लिखे हुए क्रमसे गायत्रीका न्यास करे।

ॐ भूः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः। ॐस्वः मध्यमाभ्यां नमः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् अनामिकाभ्यां नमः।ॐभर्गो देवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ भूः हृदयाय नमः। ॐ भुवः शिरसे स्वाहा। ॐस्वः शिखायै वषट्। ॐतत्सवितुर्वरेण्यं कवचाय हुम्। ॐभर्गो देवस्य धीमहि नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् अस्त्राय फट्। अथाक्षरन्यासः। ॐ तकारं पादाङ्गुष्ठयोः, ॐ सकारं गुल्फयोः, ॐ विकारं जङ्घयोः, ॐ तुकारं जान्वोः। ॐवकारं

---

१ तन्त्रान्तरे—न्यासेन नितरां देहे अस्यामन्त्राक्षराणि च। मन्त्राकृतिर्जपन्नित्यं साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ न्यासं विना कृता मन्त्रक्रियाः सर्वा विनिष्फलाः। तस्मान्न्यासः प्रकर्त्तव्यो मन्त्रागतफलेप्सुभिः ॥

ऊर्वोः, ॐ रेकारं गुदे, ॐ णिकारं लिङ्गे, ॐ यकारं कट्याम्, ॐ भकारं नाभौ, ॐ र्गोकारं उदरे, ॐ देकारं स्तनयोः, ॐ वकारं हृदये,ॐ स्यकारं कण्ठे, ॐ धीकारं मुखे ॐमकारं तालु-देशे, ॐ हिकारं नासिकाग्रे, ॐ धिकारं नेत्रयोः ॐ योकारं भ्रुवोर्मध्ये, ॐ द्वितीययोकारं ललाटे। ॐ नः कारं पूर्वमुखे, ॐ प्रकारं दक्षिणमुखे। ॐ चोकारं पश्चिममुखे, ॐ दकारं उत्तरमुखे, ॐ याकारं मूर्ध्नि, ॐ व्यञ्जनतकारं व्यापकं सर्वतो न्यसेत्।

इसके अनन्तर गायत्रीके जपनिमित्त आगे लिखे हुए क्रमसे विनियोग करे।

विनियोगः–

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिः।गायत्रीछन्दः। अग्निर्देवता शुक्लो वर्णः। जपे विनियोगः।

त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिः। गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि। अग्निवाय्वादित्या देवताः। जपे विनियोगः॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। गायत्री छन्दः। सविता देवता। वायव्यं बीजम्। चतुर्थं शक्तिः। पञ्चविंशतिर्व्यञ्जनानि कीलकम्। चतुर्थं पदम्। प्रणवः अग्निमुखम्। ब्रह्मा शिरः। विष्णुर्हृदयम्। रुद्रः कवचम्। परमात्माशरीरम्

श्वेतो वर्णः। सांख्यायनगोत्राः। षट् स्वराः। सरस्वती जिह्वा। पिङ्गाक्षी त्रिपदा गायत्री। अशेषपापक्षयार्थे जपे विनियोगः।

इसके अनन्तर हाथमें पुष्प ले या हाथ जोड कर आगे लिखे हुए रूपको ध्यान करे।

गायत्रीका ध्यान।

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

इसके अनन्तर गायत्रीका आवाहन करे।

विनियोगः—

तेजोसीति देवा ऋषयः। शुक्रं दैवतम्। गायत्रीच्छन्दो गायत्र्यावाहने विनियोगः।

मन्त्रः—

ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्रसे उपस्थान करे।

विनियोगः—

तुरीयपदस्य विमल ऋषिः। परमात्मा देवता। गायत्री छन्दः। गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

---

१ देवता न च सन्तुष्टा सर्वदा संमुखी भवेत्।
अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी मता॥
संग्रथ्य निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता॥

इन मुद्राओंको करके अनन्तर गायत्रीसे तीन आचमन करे । यथा--

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं स्वाहा । ॐ भर्गो देवस्य धीमहि स्वाहा । ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ।

इस क्रमसे तीन आचमन, करके अनन्तर सावधान हो रुद्राक्षकी माला गोमुखीमें स्थापित या वस्त्रसे आच्छादित (ढांप मूंद) कर मन्त्रके अर्थको समझता हुआ तीनों पदोंको भिन्न २ उच्चारण करता एकाग्र चित्तसे पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर गायत्रीका जप करे । चाहे कोई काल हो ।

गायत्रीजपस्वरूप ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ ॥

---

१ (शंखः)-कुशमयासनासीनः कुशोत्तरीयवान् कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ।

२ अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितो भंगुरिर्लघुः । भिन्नः पुरा धृतो जीर्णो रुद्राक्षो वरदः स्मृतः ॥ (स्कान्दे) रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोनन्तफलप्रदः । अनामिकादिद्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण च । तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता॥ शक्तेः करमाला-सनत्कुमारसंहितायाम्- " पर्वद्वयमनामायाः परिवर्तेन वै क्रमात् । पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्ज्जन्येकं समाहरेत् । अंगुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलंघने । असंख्यातं तु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ " (आ. का.)- मध्यमादिद्वयं पर्व जपकाले तु वर्जयेत् । तं वै मेरुं विजानीयात्कथितं ब्रह्मणा पुरा ॥ गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्मन्त्रं नैव प्रकाशयेत् । अक्षमालां च मुद्रां च गुरुं नैव प्रदर्शयेत् ॥ अर्थात् माला और मुद्राको यतनसे गुप्त रक्खै इसीवास्ते गोमुखीमें या कपडेसे ढांपके माला रखना चाहिये । गुरु अपना बतलावे परन्तु मन्त्र किसीसे न बतलावे । और माला, मुद्राको इस तरह गुप्त रक्खे कि गुरु भी न देखे (यतः) मन्त्रस्य पुंस्त्वं मालायाः स्त्रीत्वं च तयोः संयोगो रहस्येव भवति)

३ (स्मृत्यन्तरे)-सम्पुटैकषडोङ्कारा गायत्री त्रिविधा मता । तत्रैकप्रणवा ग्राह्या गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत् । अन्ते यः प्रणवं कुर्यान्नासौ वृद्धिमवाप्नुयात् ॥ सम्पुटां च षडोंकारां गायत्रीं च जपेद्यतिः । (गायत्रीपंचाङ्गे)-धर्मशास्त्र-

यथाशक्ति जप करके तीन मालासे कम कभी भी ब्राह्मण जप न करे । अनन्तर गोमुखी शिरपर रख गायत्रीसे तीन आचमन करके आठ मुद्रा करे ।

मुद्रा ।

सुरभि १ ज्ञांन २ वैराग्यं ३ योनिः ४ शंखो ५ थपङ्कजम् ६ ॥ लिङ्ग ७ निर्वाण ८ मुद्रेति जपान्तेष्टौप्रदर्शयेत् ॥

इन मुद्राओंको करके हाथमें जल ले आगे लिखे हुए बाक्यसे जल छोड देवे।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

इसके अनन्तर गायत्रीसे षडंगन्यास करे पश्चात् गोमुखी शिर परसे उतार कर सूर्यको आगे लिखे हुए मन्त्रसे नमस्कार करे ।

एकचक्र इत्यस्य नारायणऋषिः । उष्णिक् छन्दः । सूर्यो देवता । सूर्यनमस्कारे विनियोगः ।
एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनकभूषितः ।
स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥

—पुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत । पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ॥ विश्वामित्रकल्पे—ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवस्वस्तथैव च । गायत्रीं प्रणवान्तां च मध्ये त्रिप्रणवां तथा ॥ मनुः—ॐकारः पूर्वमुच्चार्यो भूर्भुवःस्वस्तथैव च । गायत्रीं प्रणवश्चान्ते जप एवमुदाहृतः ॥ प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च पुनः प्रणवसंयुतम् । अन्त्योंकारसमायुक्तं मन्यन्ते कवयोऽपरे ॥ (तीन प्रणव लगाके गायत्रीका जप करना यह बहुतोंका सम्मत है) दे०—भा० " संपुटैका षडोंकारा भवेत्सा ऊर्ध्वरेतसाम् । गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरीयां जपेत् ॥ तुरीयपादौ गायत्र्याः परोरजसे सावदोम् ॥ भिन्नापादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी । अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति । अच्छिन्नपादगायत्रीजपं कुर्वन्ति ये द्विजाः । अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च ॥

ॐ गायत्र्यै नमः । ॐ सावित्र्यै नमः । ॐ सन्ध्यायै नमः । ॐ सरस्वत्यै नमः । ॐ दिग्देवताभ्यो नमः ।

इसके अनन्तर हस्तमें जल लेकर अर्पण करे (जल छोडे)

अनेन प्रातःसन्ध्याङ्गभूतेनामुकसंख्याकेन अथवा यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रजपाख्येन कर्मणा श्रीभगवान् ब्रह्मस्वरूपी सूर्यनारायणः प्रीयतां तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

पश्चात् विसर्जन करे । यथा--

उत्तमे शिखरे इत्यस्य कश्यप ऋषिः । अनुष्टुप्छंदः । सन्ध्या देवता । सन्ध्याविसर्जने विनियोगः ।
ॐ उत्तमे[1] शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि ।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥
स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पवने द्विजाता । आयुः पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा प्रयातु ब्रह्मलोकम् ॥

अनन्तर शिखाकी ग्रन्थि (चुटैयाकी गांठ) छोड देवे ।

मन्त्रः–

ब्रह्मशापसहस्राणि रुद्रशूलशतानि च ।
विष्णुचक्रसहस्रेण शिखामुक्तिं करोम्यहम् ॥

इस मन्त्रसे ग्रंथिको छोड पुनः बद्ध (बांध) कर लेवे कुश पवित्रका त्याग करे । गायत्री कवचादिका पाठ करना हो तो इच्छानुसार पाठ करे । अनंतर जब आसनसे उठना हो तो आसनके नीचे जल छोडकर वहांकी मृत्तिका माथेमें

---

१ ये दोनों मन्त्र नारायण उपनिषद्के हैं ।

लगालेवे न लगानेसे इन्द्र जपको हर लेताहै । "यस्मिन्स्थाने जपं कृत्वा शक्रो हरति तज्जपम् । तन्मृदा लक्ष्म कुर्वीत ललाटे तिलकाकृति ।" इति प्रातःसन्ध्या ॥

त्रिकालगायत्रीध्यान ।

प्रातः—

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भस्तनी स्रुक्स्रुचं
बिभ्राणारुणकान्तिरिन्दुवदनाऋग्रूपिणी बालिका ।
हंसारोहणकेलिरम्बरमणेर्बिम्बाश्रिता भूतिदा
गायत्री हृदि भाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा १

मध्याह्ने—

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलया भूत्यै श्रियै चास्तु नः ।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा
सावित्री वृषवाहना शिवतनुर्ध्येया यजूरूपिणी ॥२॥

सायम्—

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालंकृता
श्यामातन्वि जयादिभिः परिलसद्गात्राञ्चिता वैष्णवी ।
ताक्ष्यस्था मणिनूपुराङ्गदशतग्रैवेयभूषोज्ज्वला
हस्तालम्बितशङ्खचक्रसुगदा भूत्यै श्रियै चास्तु नः ३

मध्याह्न और **सायंकालमें** सब कर्म प्रातःसन्ध्याके सदश ही करना चाहिये। केवल संकल्प और प्राणायामके अनन्तर आचमनका जो मन्त्र है "सूर्यश्चमा मन्युश्च" इसकी जगह–मध्यान्ह कालमें "आपः पुनन्तु" और सायंकालमें "अग्निश्च" मन्त्रसे आचमन करे, शेष पूर्ववत् हैं। और जिसको ध्यान त्रिकालका

भिन्न भिन्न करना हो तो वें ध्यानकी जगह ध्यान बदल देवें । मध्यान्हमें एक अर्घ्य देवे सायं प्रातः तीन तीन देवे ।

मध्याह्नाचमन ।

आपः पुनन्त्विति मन्त्रस्य नारायण ऋषिः । गायत्री छन्दः । आपो देवता । आचमने विनियोगः ।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु मां पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोसतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा । इति मध्याह्नाचमनम् ॥

सायाह्नाचमन ।

अग्निश्चमेति रुद्र ऋषिः । प्रकृतिश्छन्दः । अग्निर्देवता । आचमने विनियोगः ।

ॐ अग्निश्चमा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ इति सायमाचमनम् ।

सन्ध्याप्रयोग ।

कात्यायनादिपरिशिष्टसूत्रोक्तः संक्षेपतस्त्रिकालसन्ध्याप्रयोगः ॥

का० प० सूत्रे–

उत्तीर्य धौते वाससी परिधाय मृदोरुकरौ प्रक्षा-

ल्याचम्य त्रिरायम्यासून्पुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वं क्षिप्तोर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्षन्नुद्वयमुदुत्यं चित्रं तच्चक्षुरिति गायत्र्या च यथाशक्ति।

(पा० गृ० सूत्रे)

वाक् प्राणश्चक्षुःश्रोत्रं यशोबलमिति त्र्यायुषाणि करोति। आदौ भस्मधारणम्। ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः–ललाटे। कश्यपस्य त्र्यायुषम्–ग्रीवायाम्। यद्देवेषु त्र्यायुषम्–दक्षिणांसे। तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्–हृदये।

अनन्तरमाचमनम्–

ॐ आमागन्यशसासꣳसृज वर्चसा तं मा कुरु प्रियं प्रजानामाधिपातिं पशूनामरिष्टं तनूनाम्।

इस मन्त्रसे तीन आचमन करे।

ततः प्राणायामः–

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ एवं त्रिवारं प्राणायामः कर्तव्यः।

अर्थात् पूरकमें तीन, कुम्भकमें तीन, रेचकमें तीन वार उच्चारण करे।

न्यासः–वाङ्म आस्येऽस्तु–मुखं कराग्रेण स्पृशेत्। नसोर्मे प्राणोऽस्तु–तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां नासारन्ध्रद्वयं

स्पृशेत् । अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु-अनामिकांगुष्ठाभ्यां चक्षुर्द्वयं स्पृशेत् । कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु-मध्यमांगुष्ठाभ्यां उभयकर्णौ स्पृशेत् । बाह्वोर्मे बलमस्तु-कराग्रेण बाहुद्वयं स्पृशेत् । ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु-युगपद्धस्तेनोरू स्पृशेत् । अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह शिरःप्रभृति पादान्तानि सर्वाङ्गान्युभाभ्यां हस्ताभ्यामालभेत् ।

इस क्रमसे न्यास करे । अनन्तर-

सङ्कल्पः-ॐ तत्सत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसन्ध्योपासनमहं करिष्ये ॥ अनन्तरमर्घ्यम् । सुपुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वं प्रक्षिप्य-

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । सवित्रे नमः ।

इस प्रकार पुष्प जल मिलाकर गायत्रीसे तीन अर्घ्य देवे । "सूर्योपस्थानम्" खडे होकर हाथ उठाके मन्त्र बोले ।

मन्त्रः-

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् । उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् । ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षᳬसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

ॐतच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदःशतꣳशृणुयाम शरदःशतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

(गायत्रीमन्त्रजपः)

इसके अनन्तर बैठकर यथाशक्ति गायत्रीका जप करे ।

उपस्थान ।

जपान्ते उपस्थानम् । ॐविभ्राड् बृहत्० १७ऋचः ॐ सहस्रशीर्षा० १६ ऋचः । ॐ यज्जाग्रतो०६ ऋचः । ॐ यदेतन्मण्डलं तपति० १२ ऋचः । वा १ ऋग् । इत्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत् ॥

अर्थात् इस प्रकार खडे होकर उपस्थान कर प्रदक्षिणा करे, नमस्कार करके बैठ जावे अनन्तर हाथमें जल लेकर अर्पण करे ।

अनेन यथाशक्ति गायत्रीजपादिकृतेन ब्रह्मस्वरूपी सविता देवता प्रीयताम् ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

इति कात्यायनादिपरिशिष्टसूत्रोक्तास्त्रिकालसन्ध्याप्रयोगः समाप्तः ॥

इसमें ध्यान आवाहन नहीं है इससे इसी क्रमसे तीनों कालमें करना चाहिये । यह सन्ध्या संक्षेपसे प्रमाणसहित लिखी गई, जिन पुरुषोंसे विस्तारसे न होसके वे इस प्रमाणसे करें ।

गायत्रीस्वरूप।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

गायत्रीके चौबीस अक्षर।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
त	त्स	वि	तु	र्व	रे	णि	यं	भ	र्गो	दे	व	स्य	धी

१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
म	हि	धि	यो	यो	नः	प्र	चो	द	यात्।

पदच्छेदः।

तत् सवितुः वरेण्यम् भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात्।

अन्वयः।

३ १ ४ ५ २ ६ ९ ७ ८

तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः

१०

प्रचोदयात्॥

सवितुः[1] कर्मणि जगतां प्रवर्तकस्य देवस्य दिव्य-गुणवतो भगवतस्तत्प्रत्यक्षं प्रसिद्धं वा वरेण्यं

---

१ यह गायत्रीका अर्थ प्रयोजनमात्र लिखा गया है क्योंकि इस मूल प्रकृति महामायाकी आराधना (जप) करनेसे आपसे आप ही (स्वयं) उत्तम बोध होजाताहै दिव्यदृष्टि होजाती हैं सिद्धियोंकी स्फूर्तियां होने लगती हैं, मूर्ख भी सुबोध पंडित होजाताहै, लोगोंमें मान्यवर हो जाताहै। इससे पदोंको अलग २ कर चित्तकी सावधानतासे जप करना चाहिये, चंचलता करनेमें कुछ गुण नहीं है॥

सर्वावरकं सर्वतश्श्रेष्ठं वा भर्गो ज्योतिर्धीमहि ध्यायेम यो भगवानादित्यो नोऽस्माकं धियः प्रज्ञाः प्रचोदयात् प्रेरयेत् ॥

लोगोंको कर्ममें लगानेवाले दिव्य गुणयुक्त भगवान्की इस सर्वप्रसिद्ध प्रत्यक्ष ज्योतिका ध्यान करें जो भगवान् सूर्यरूपसे हम लोगोंकी बुद्धिको अच्छे कामोंमें लगाते हैं ।

विशेषमहिमा ।

गायत्री वा इद ँ सर्वभूतं यदिदं किञ्च वाग्वै गायत्री येयं पृथिवी यदिदं शरीरं यदस्मिन्पुरुषे हृदयमिमे प्राणाः सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री इति ॥

यह सब उत्पन्न प्राणी जो कुछ स्थावर वा जंगम हैं वह सब गायत्री ही है, वाणी गायत्री ही है जो यह पृथिवी है जो यह शरीर है जो इस पुरुषमें हृदय है, जो ये प्राण हैं वह यह चार पदवाली छः विधकी गायत्री है ।

संक्षिप्त यज्ञोपवीतधारणविधि ।

प्रथम आचमन करके प्राणायाम करे, अनन्तर इस कल्पनासे संकल्प करे ।

मम श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं संस्कारपूर्वकनवीनयज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये ।

इस प्रकार संकल्प करके यज्ञोपवीत (जनेऊ)को प्रक्षालन करे (धोय डाले) । अनन्तर दश गायत्रीसे यज्ञोपवीतपर मार्जन करके नव तन्तुका आवाहन करे ।

---

१ छा० उ०—" अथ यदतः परोदिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं गाव तद्यदिदमस्मिन्नंतः पुरुषो ज्योतिः ॥ " अर्थ—इस दिवलोक (स्वर्गलोक) से जो परंज्योति विश्वसे ऊपरवालोंमें अर्थात् सब विश्व संसारसे ऊपर उत्तम लोकोंमें जो ऐसे हैं कि उनसे अधिक श्रेष्ठ नहीं है उनमें प्रकाशित होता है वह यही है जो इस पुरुषमें अन्तर्ज्योति है । अभिप्राय यह है कि, वह परंज्योति ब्रह्मरूप ही है ।

ॐ ॐकारं प्रथमतन्तौ न्यसामि । ॐ अग्निं द्वितीयतन्तौ न्यसामि । ॐ नागान् तृतीयतन्तौ न्यसामि । ॐ सोमं चतुर्थतन्तौ न्यसामि । ॐ पितॄन्पञ्चमतन्तौ न्यसामि । ॐ प्रजापतिं षष्ठत० । ॐ वायुं सप्तमतन्तौ न्यसामि । ॐ सूर्यमष्टमत० । ॐ विश्वान् देवान् नवमतन्तौ न्यसामि ॥

पश्चात् ग्रन्थि (गांठ) में ब्रह्मा विष्णु महेशका आवाहन करे । पश्चात् "ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्" इस मन्त्रसे सूर्यको दिखावे पश्चात् यज्ञोपवीतका पूजन करे वा (मानसोपचारैः सम्पूज्य) ध्यान करे ।

प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं कार्पाससूत्रोद्भवं ब्रह्मसूत्रम् । ब्रह्मत्वसिद्ध्यै च यशःप्रकाशं जपस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्रम् ॥

पश्चात् विनियोग करे ।

यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ॥ ॐ यज्ञोपवीतम्परमम्पवित्रम्प्रजापतेर्यत्सहजम्पुरस्तात् ॥ आयुष्यमग्र्यम्प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतम्बलमस्तु तेजः ॥ ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

इस मन्त्रको पढ आचमन करके जनेऊ पृथक् २ धारण करे । पुनः आचमन कर यथाशक्ति गायत्रीका जप कर शिरसे त्याग करे ।

पुराने यज्ञोपवीतत्याग मन्त्र ।

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया ॥
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥

इस मन्त्रसे निकाल कर जलमें प्रवाह करै। पश्चात् गायत्री जपका अर्पण करे। यथा–

अनेन नवयज्ञोपवीतधारणार्थं कृतेन यथाशक्ति गायत्रीजपकर्मणा श्रीसवितादेवता प्रीयतां तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु॥

अथ वैश्वदेवप्रयोग।

आचम्य प्राणानायम्य संकल्पः–

आचमन प्राणायाम करके संकल्प करे। यथा–

अद्य पूर्वोच्चारित एवंगुणविशेषणविशिष्टे शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्चसूनाजनितसकलदोषपरिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पञ्चमहायज्ञैरहं यक्ष्ये॥

इस प्रकार संकल्प करके "पवित्रेस्थोवै०" इस मन्त्रसे अनामिकामें कुश पवित्र धारण करके जिस अग्निसे पाक (रसोई) हुआ हो उस अग्निको ले उसमेंसे–

"हुं फट्" इति मन्त्रेण क्रव्यादांशमग्निं नैर्ऋत्यां दिशि क्षिपेत्।

उक्त मन्त्र बोलकर थोडी अग्नि निकाल कर नैर्ऋतकोणमें फेंक दे। अनन्तर–

ॐ अन्वग्निरूषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनुसूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननुद्यावा पृथिवीऽआततन्थ॥

इस मन्त्रसे अग्निको ले "कुण्डे वा स्थण्डिले अग्निं संस्थाप्य" कुण्ड हो व बेदी हो उसपर स्थापन (रखना) करता हुआ।

ॐ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा

ओषधीराविवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा सरिषस्पातु नक्तम् ॥

इस मन्त्रको बोले । पश्चात्–

अग्निं वेणुधमन्या प्रबोधयेत् ।

बांसकी पूपली या हाथके अधारसे फूंके ।

तत्र मन्त्राः–ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं० । ॐ ताᳬसवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्यां जामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬ सहस्रधारां पयसामहीं गाम् । ॐ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तं न आसुव ॥

अनन्तर अग्निका ध्यान करे । यथा–

चत्वारि शृङ्गात्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽअस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ आविवेश । ॐ एषोहदेवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वोह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः । मुखं यः सर्वदेवानां हव्यभुक्कव्यभुक्तथा । पितॄणां च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने॥ "पावकनाम्ने वैश्वानराय नमः"

ध्यान करके "पावकनाम्ने०" इस मन्त्रसे अग्निका पंचोपचार पूजन करे, (पूजन द्रव्यसे या जलसेही) अनन्तर आगेके मन्त्रसे जल छोडे ।

अग्ने शांडिल्यगोत्र मेषध्वज प्राङ्मुख संमुखो भव । ततः प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्य इतरथा तदावृत्तिः मध्य-

मानामिकांगुष्ठैर्घृतप्रोक्षितौदनस्य बदरीफलप्रमाणा आहुतीर्जुहुयात् ॥

अग्निको जलसे पर्युक्षण (जल चारों तरफ धाराकी तरह छोडना) करके बेरके फल समान आहुति देवे ।

ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये १ । ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे २ । ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय ३ । ॐ भूर्भुवः स्वःस्वाहा इदं प्रजापतये ४ । ॐ देवकृतस्यैनसो वै यजनमसि स्वाहा इदमग्नये ५ । ॐ मनुष्यकृतस्यैनसो वै यजनमसि स्वाहा इदमग्नये ६ । ॐ पितृकृतस्यैनसो वै यजनमसि स्वाहा इदमग्नये ७ । ॐआत्मकृतस्यैनसो वै यजनमसि स्वाहा इदमग्नये८। ॐ एनसऽएनसो वै यजनमसि स्वाहा इदम० ९ । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्यै सर्वस्यैनसो वै यजनमसि स्वाहा इदम० १० । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये ११। ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते १२ ।

इस प्रकार द्वादश आहुति करके गृहमें जो देव हों तो उनको नैवेद्य दिखावे । अनन्तर–

वितस्तिमात्रं उदकेन मण्डलं कृत्वा तदुपरि बलिहरणं कुर्यात् ।

जलसे बीता प्रमाण मण्डल बनाके उसपर बली (भाग–ग्रास) लगावे परन्तु जहां पितृकी बलि है वहां अपसव्य होके देवे । पश्चात् हाथ धोके सव्य हो जिस पात्रमें बलि दिया उस पात्रको धोके वायव्य कोणमें छोड देवे यही निर्णेजन है ।

ईशान्याम्

२ ॐ विधात्रे नपः

१० ॐ उदीच्यै दिशे नमः

६ वायवे नमः

१७ ॐ भूतानां च पतये नमः

१६ ॐ उषसे नमः

१५ ॐ विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः

१४ ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः

२० ॐ हन्त ते सनका-
दिमनुष्येभ्यो नमः

वायव्ये-

१९ ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं

(पात्रं प्रक्षाल्य क्षिपेत्)

सकृद् गायत्रीं जपेत् ।

७ ॐ प्राच्यै दिशे नमः

३ ॐ वायवे नमः

१३ ॐ सूर्याय नमः

१२ ॐ अंतरिक्षाय नमः

११ ॐ ब्रह्मणे नमः

५ ॐ वायवे नमः

९ ॐ पश्चिमायै दिशे नमः

आग्नेय्याम्

१ ॐ धात्रे नमः

८ ॐ दक्षिणायै दिशे नमः

४ ॐ वायवे नमः

अपसव्यम्

१८ ॐ पितृभ्यः स्वधा
नमः

मण्डलके बाहर पांच ग्रास देना।

सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता। गोग्रासं तु मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम्। इदं गोभ्यः १। द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ। ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि रक्षेतां पथि मां सदा॥इदं श्वभ्याम् २। यमोसि यमदूतोसि वायसोसि महामते। अहोरात्रकृतं पापं बलिं भक्षतु वायसः। इदं वायसेभ्यः ३। देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसंघाः॥ प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥ इदं देवादिभ्यः ४। पिपीलिकाकीटपतंगकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनियोगबद्धाः। प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्योऽवसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥ इदं पिपीलिकाकीटपतंगेभ्यो०॥ ५॥

इन वाक्योंसे पांचोंको बलि (ग्रास) देवे। अनन्तर–

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्।

इस मन्त्रसे भस्म लगावे। पुनः विसर्जन करे। यथा–

गच्छगच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन॥

ॐ यज्ञ यज्ञङ्गच्छ यज्ञपतिङ्गच्छ स्वां योनिङ्गच्छ स्वाहा एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः सर्व्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा॥

इस मन्त्रसे विसर्जन करके कुशपवित्रका त्याग करे—अनन्तर अर्पण करे। यथा—

अनेन वैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञनारायणस्वरूपी परमेश्वरः प्रीयताम् । ॐतत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

पश्चात् अर्पित बलिको गौको देवे और जो श्वान वा कौवा आदिकी है वह श्वान कौवे आदिको देवे । पश्चात् हाथ पांव धोकर भोजन करे ।

वैश्वदेवमें अग्निविचार ।

छन्दोगपरिशिष्टे—यस्मिन्नग्नौ भवेत्पाको वैश्वदेवस्तु तत्रवै
आङ्गिराः—शालाग्नौ च पचेदन्नं लौकिके वापि नित्यशः ।
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥

अग्निहोत्रके अग्निसे पाक करे चाहे लौकिक अग्निसे करे परन्तु जिस अग्निसे पाक करे उसी ही अग्निमें वैश्वदेव करना चाहिये ।

वैश्वदेवमें हवनीयद्रव्यविचार ।

विश्वा०क०—फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः ।
अलाभे येन केनापि काष्ठैर्मूलतृणादिभिः ॥
जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ।
संकल्पयेद्यमाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि ॥

फल, दही, घी, मूल (शकरकन्द, जमीकन्द, रतालू,) शाक और जल आदिसे बैश्वदेव करे। न मिलने पर काष्ठ,पत्ता आदिको ही घीमें मिलाके अग्निमें आहुति देवे परन्तु तेल और क्षारके वस्तु न मिलावे, वर्जित वस्तु छोडकर जो भोजन करना वही अग्निमें आहुति देना चाहिये ।

कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलत्थकम् ।
क्षारं च लवणं चैव वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥

कोदव, चना, उरद, मसूरी, कुलथी और नोन आदि क्षार वस्तु बैश्वदेवमें न लगावे अर्थात् इनकी आहुति न देवे ।

पट्टकेन भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ।
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ॥

पत्तेसे अग्नि न जलावे (फूके) रोग होताहै, सूपसे धनका नाश, हाथसे मृत्यु और बांसकी पोपलीके आधार मुखसे सिद्धि होती है ।

पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करी ।
कण्डनी चोदकुम्भी च तासां पापस्य शान्तये ॥

गृहस्थके यहां चूल्हा पोतने आदिमें पीसनेमें कूटनेमें झाडू देनेमें और जल पात्रादि इन पांचोंमें जीवहत्या नित्य होतीहै इसके शान्त्यर्थ वैश्वदेव करना चाहिये।

वैश्वदेव न करनेसे दोष ।

गीतायाम्—यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

जो यज्ञसे बचा हुआ भोजन करतेहैं वे सब पापोंसे छूट जातेहैं और विना वैश्वदेव किये ही भोजन करते हैं वे पाप ही भोजन करते हैं ।

देवीभा०—अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुङ्क्ते मूढधीर्द्विजः।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥

जो मूर्ख द्विज विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करताहै वह मूर्ख नीचा शिर होके कालसूत्र नाम नरकमें जाताहै ।

पाराशरः—वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः।
सर्वे ते नरकं यान्ति काकयोनिं व्रजन्ति च ॥

जो वैश्वदेव नहीं करते और अतिथियोंका तिरस्कार करतेहैं वे सब नरकमें जातेहैं और कौवेकी योनिमें जन्म लेतेहैं ।

इससे वैश्वदेव अवश्य करना चाहिये । इस वैश्वदेवका बडा माहात्म्य है इसके करनेसे गृहस्थ सब पापोंसे छूट जाताहै और यह कर्म विना प्रयास ही लक्ष्य देनेसे होसकताहै, इसे अवश्य करना चाहिये ।

योगसन्ध्याचिकीर्षूणां मनोरञ्जनकारिका ।
वर्णिता वर्णिना सम्यग्योगसन्ध्या मयोत्तमा ॥
राकेशरसधर्मोर्व्वीसम्मिते वैक्रमेऽब्दके ।
तपसीने च राकायां सत्कृतिः पूर्णतामिता ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्य्याऽनुगृहीतशृङ्गेरीमठाम्नायिसर्वगुणसंपन्नधर्म्ममूर्त्तिदानाग्रणीश्रीमज्जगन्नाथचैतन्यब्रह्मचारिणां पादाब्जसेविना अष्टाङ्गयोगसमुल्लसितश्रीसदाशिवनारायणब्रह्मचारिणा विरचितेयं सन्ध्या समाप्ता ।

ग्रन्थकर्ता कृत गायत्रीका भजन ।

श्रीविद्या गायत्री माता जपै तुमारा नाम । जगमें ॥ टेक ॥
सत् चित् रूप प्रधान सनातनि अजा प्रकृति श्रुति धाम ।
दारुण भव भय हारिणि ईश्वरि गिरा उमातनु श्याम ॥ १ ॥
शिवा वराभयदायिनि अंबे मायापति धर वाम ।
वसत चराचर जीव मातुमें सृजति हरति यह काम ॥ २ ॥
नारायणि नरनारि स्वरूपिणि सकल जपत तव नाम ।
राजहंसपर शोभित रमणी मेरु शिखर पर ठाम ॥ ३ ॥
यक्ष राज सब सुरसे सेवित ध्यान धरत सब याम ।
णाक्षररूप ऋषिनसे वंदित घटघटमें अभिराम ॥ ४ ॥
चैतन ब्रह्मचारि पद गावत पदपदमें धरि नाम ।
सावित्री प्रति प्रणवौं पुनि पुनि माति मति मति दे माम ॥ ५ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण–बंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी–बंबई.